अपना-अपना मरुथल

तथा अन्य कहानियां

प्रीतिश्री

८९३.३१
प्रीति/अ

कहानी हमारे आसपास के परिवेश और कल्पना के मखमली लिबास को पहनकर, लेखनी की नोंक पर केन्द्रित होती, कोरे कागज़ पर गंगा की निर्मल धारा-सी प्रवाहित हो उठती है।

'अपना-अपना मरुथल' की कहानियां समाज की बहुरंगी वीर बहूटियों को अपने भीतर संजोये हुए हैं।

हम सब अपने भीतर विशाल समुद्र और फैलाव भर मरुथल छिपाए हुए हैं। कहानियां इन्हीं की लहरों के साथ बही, सँवरी सीपियाँ और मृगतृष्णा-सी हमारे भीतर के दरकान को शब्दान्वित करने हैं।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी पुस्तकालय
इलाहाबाद
वर्ग संख्या ८१३.३१
पुस्तक संख्या प्रीति/अ
क्रम संख्या ६८३०

'अपना-अपन
उफनते हुए जल-र
को बाहर निकाल
भारतीय समाज
घना-वन, नैतिक
कुछ देख पाने
युवा 'दंगाइयों' क
कहीं बेरोज़गार
बिछाने की लालस
का भयावह आक्र
और कर्तव्यों का स्नेह सेतु। सुगनी के बालपन के वैधव्य में तबदील होने की अथाह पीड़ा-यात्रा है।

भीड़ से भरी धरती में अपने-अपने हिस्से का मरुथल। इस मरुथल में कहीं कोई शबनमी बूंद मोती बनकर झिलमिलाती है तो मन-दर्पण इन्द्रधनुष-सा आलोकित हो उठता है। यह शबनमी बूंद साबुन के झाग-सी, फूंक भरते ही अस्तित्वहीन हो जाती है। सामने फिर वही फैलाव भरा मरुथल, आंचल के कोने में गांठ-सा बंध जाता है।

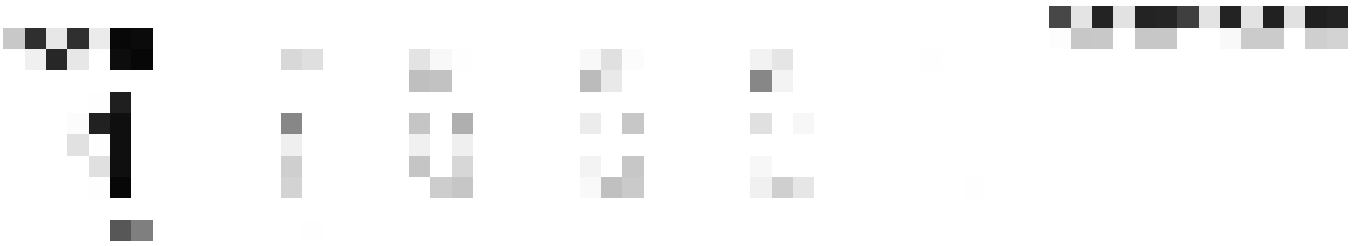

अपना-अपना मरुथल
तथा
अन्य कहानियां

पराग प्रकाशन, दिल्ली-32

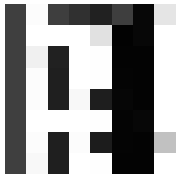

अपना-अपना मरुथल

तथा अन्य कहानियां

प्रीतिश्री

APNA-APNA MARUTHAL TATHA ANYA KAHANIYAN

By

Priti Shri

Rs. 30.00

मूल्य : तीस रुपये / प्रथम संस्करण, 1993 / प्रकाशक : पराग प्रकाशन 3/114, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-32 / मुद्रक : सविता प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32

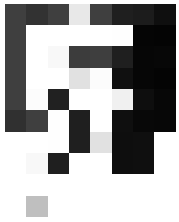

दृष्टि

कहानी कभी किसी बाहरी दबाव से नहीं रची जाती। हां, मन के भीतर से कही कहानी स्वयं बोलती है, जिसे रचनाकार अपनी लेखनी के माध्यम से कोरे कागज पर उतारता चला जाता है।

मैं स्वयं के कहानीकार होने का दावा नहीं करती, परन्तु समय-समय पर प्रकाशित कहानियों को पढ़कर अनेक पाठकों के स्नेह-भरे पत्र मुझे लेखन की ऊर्जा प्रदान करते रहते हैं। पहले कहानी-संग्रह 'बीच की औरत' की कहानियों के पाठकों के पत्र अब तक मेरे पास आते हैं। भविष्य में प्रकाशित होने वाली कहानियों की प्रतीक्षा और उत्सुकता संभवत: मेरी कहानियों की समर्थता का प्रमाण-पत्र है, जो मेरे प्रिय पाठकों द्वारा मुझे प्राप्त होती रहती है।

इस दूसरे कहानी-संग्रह 'अपना-अपना मरुथल' में मेरी दस कहानियां हैं। सभी की ज़मीन भारतीय समाज में पनपने वाली विसंगतियों, जलते हुए अलावों की रोशनी में कुछ देख पाने की कोशिश है।

'अपना-अपना मरुथल' आपके सामने रखते हुए मुझे अच्छा लग रहा है।

मैं आभारी हूं अपने अनेक मित्रों की जिन्होंने समय-समय पर मुझमें प्रेरणा, प्यार और प्रोत्साहन भरकर 'अपना-अपना मरुथल' के प्रकाशन में मुझे सहयोग दिया।

मुझे आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी। अपने सांवले मन से निस्तरित इस उजली तसवीर को आपके दृष्टि-स्पर्श हेतु आपको ही सौंप दिया है।

आपका अपनापन मुझे रचना-धर्मिता से दृढ़ता से जोड़ता हुआ, कहानी-सृजन की नवीन ऊर्जा देता रहेगा, इसी विश्वास के साथ--

—प्रीतिश्री

2/178, विवेक खण्ड-2
गोमती नगर
लखनऊ

अपना-अपना मरुथल
तथा
अन्य कहानियां

अनुक्रम

अपना-अपना मरुथल	9
पिंजरे का सुख	24
उधार का बेटा	30
शिवा	35
पीले पत्तों का दर्द	43
सुगनी	51
स्नेह-सेतु	60
आक्रोश	66
लाल पाटों वाली साड़ी	80
दंगाई	85

अपना-अपना मरुथल

शाम के मखमली आंचल से छनती, सुनहरी धूप की किरन हरियाए लान पर पड़ रही थी। घास की कोंमल कोंपलों में जुगनुओं की रोशनी तैर रही थी। ईषा लॉन में लगी केन चेयर पर आकर बैठ गई। उसने अपने को कुर्सी पर निढाल छोड़ दिया। उसके नेत्र काले सलेटी आसमानी बादलों में उड़ते कबूतरों की पंखों से टकराए। उसके यादों के दरीचों से झांकती ढेर-सी समृतियां उसे सुखद लगीं। उसे अनु याद आता रहा। सच तो यह भी है कि वह अनु से कभी दूर हुई ही नहीं। मन के किसी अनजाने कोने में अनु सदा उसे जिन्दगी जीने की प्रेरणा देता रहता।

ईषा कुर्सी पर से उठकर टहलने लगी। उसके गोरे पाँव मखमली गुदगुदी घास पर पड़ते गए, उसकी यादों की बात खुलती गई। उस दिन अनु के इन्तजार में ईषा कितना परेशान हुई थी। टेलीफोन मिलाते-मिलाते वह थक गई। हारकर मिसेज चोपड़ा के यहां से फोन मिलाया था। मिस्टर चोपड़ा उसके पति के फर्म में काम करते हैं। मिसेज चोपड़ा ने चुटकी ली थी। "भई, किससे इतनी मीठी-मीठी बातें हो रही हैं। जरा मैं भी तो सुनूं।" ईषा ने मिसेज चोपड़ा को हंसकर टाल दिया था। अनु उसके जीवन में छाता जा रहा है। उसकी अकेली सुनसान जिन्दगी में अनु का प्यार पतझर में मधुमास-सा आया। ईषा जानती है, यह सब ठीक नहीं। उसका इस तरह पराये पुरुष के साथ मिलना-जुलना, सामाजिक संहिता के भीतर कहीं नहीं। न जाने कौन-सा सम्मोहन है जो

उसे अनु के निकट खींचता जाता है।

कलैण्डर के पन्ने सावनी हवा के झोंकों से हिलते रहे। ईषा की दृष्टि बार-बार चौखट से वापस लौट आती। उसका पति कितना चाहता था उसे। एक दिन भी वह ईषा को अकेले मायके नहीं छोड़ता था। ईषा कभी मन भरकर मायके नहीं रह पायी। ललित के ऑफिस की छुट्टियां उसे अकेले मायके न रुकने देतीं। कभी-कभी ईषा सोचती, कहां चले गए वे दिन। अब तो ललित के पास ईषा के लिए समय ही नहीं, ऑफिस दूर और ढेर सारे धन्धे।

कभी-कभी ईषा सोचती है—सोनू और सनी को होस्टल भेजकर वह एकदम ठूंठ वृक्ष-सी हो गई है। कितना रोई थी ईषा परन्तु ललित ने कहा था, "बच्चों के भविष्य की चिन्ता नहीं तुम्हें? इन स्कूलों के पढ़ने वाले बच्चे अफसरों से कम नहीं बनते। ईषा घर गई थी। अपने कलेजे के टुकड़ों को होस्टल भेज दिया था उसने। अब तो अकेलापन ईषा के चारों तरफ जंगली घास की तरह उगता गया और इस झुरमुट में ईषा बेहद बेचैन और अकेली रहने लगी। ईषा के मन की घोर पीड़ा ने उसे कविता के करीब ला दिया। उसे सकून मिलता, कभी-कभी ललित को सुनाती। ललित उसे सुनी-अनसुनी कर देता। उसे यह बातें नामसेंस लगतीं। धीरे-धीरे ईषा ने लेख, कहानी सब कुछ लिखना शुरू कर दिया, उसके लेख छपते। वह बहुत खुश होती। कभी-कभी ललित भी खुश होता और कभी-कभी बिना किसी प्रतिक्रिया के अखबार या पत्रिका इधर-उधर रख देता। ललित अपने जीवन के दायरे में बहुत व्यस्त है। उसे ऑफिस और अपने कार्यों के अलावा कुछ खास नहीं लगता।

ऐसे ही एक नितान्त अकेलेपन के दिनों में अनु से वह मिली। कई बार अनु उसे बैंक में मिलता। एक गहरी चितवन से ईषा की तरफ देखता। ईषा के पोर-पोर में वह दृष्टि बिंध जाती। घर आती तो लगता सामने वह खड़ा है। फिर उसे भूल कर अपने को व्यस्त कर लेती। ललित को कम्पनी के कार्य से एक माह के टेप्यूटेशन पर कलकत्ता जाना है। ईषा सोच रही है, ललित का जाना तो बेहद जरूरी है। वह भी चली जाती परन्तु उसकी नयी-नयी सर्विस है। परसों ही प्रिंसिपल उससे कह रही थी,

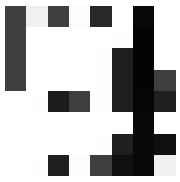

"मिसेज वर्मा, सोच लीजिएगा, आप बीच में छोड़कर तो नहीं चली जाएंगी ? यह साल तो पूरा करना ही होगा ।"

ईषा ने कहा, "जरूर करूंगी । प्यारे-प्यारे बच्चों के साथ मेरा समय अच्छा बीत जाएगा ।"

ईषा ने ललित के कलकत्ता जाने की सारी तैयारी कर दी । सुबह की फ्लाइट से जा रहा है ललित । उसके साथ उसकी सेक्रेटरी जेन और असिस्टेंट दीपक शर्मा भी जा रहे हैं । ललित के चले जाने के बाद ईषा को अकेलापन काटने को दौड़ता । कम-से-कम रात को तो ललित के रहने से उसे घर भरा-भरा लगता ।

तभी डाकिये ने आवाज लगाई । सनी का ख़त था । वह बेटे का ख़त एक सांस में पढ़ गयी । सनी कुछ परेशान है । क्या है, क्यों है, उसे नहीं मालूम । ईषा सोच रही है—रात की गाड़ी से देहरादून चली जाएगी । एकाएक उसे ध्यान आया । उसे बैंक से पैसे निकालने जाना होगा ।

वह 10 बजते-बजते बैंक के लिए चल दी । बाहर ही अनु मिल गया । वही गहरी दृष्टि "अरे आज इतनी जल्दी आप बैंक में ? अभी तो बैंक खुला भी नहीं है । कोई खास बात ?" ईषा को लगा उसके जलते हुए पांव पर किसी ने ठंडा मरहम लगा दिया है । कुछ क्षण चुप रही वह । किसी अजनबी से अपनी परेशानी कहना क्या ठीक होगा । "मुझे अनु कहते हैं । विद्यालय में अंग्रेजी पढ़ाता हूं । लगता है आप काफी परेशान है । मैं अगर उन्हें बांट सकूं ? मेरा मतलब है, आपके किसी काम आ सकूं तो मुझे प्रसन्नता होगी । कहिए क्या सेवा कर सकता हूं आपकी ?"

"नहीं, कुछ नहीं, यूं ही ।"

"नहीं बताना चाहती हैं, न बताएं । आइ एम सारी, मेरी वजह से आपको तकलीफ हो गई ।"

ईषा कैसे कहे तकलीफ नहीं । उसे आज ऐसा लग रहा है । बीते हुए पलाश के दिन लौट आए हैं पर कुछ कह नहीं सकी । धीरे से उसकी भारी पलकें झुक गयीं । "बात दरअसल यह है, मेरा छोटा सनी देहरादून में पढ़ता है उसकी चिठ्ठी आई है । कुछ तबीयत खराब है । मैं सोचती हूं उसे जाकर देख आऊं ।"

"ठीक सोचा आपने, मैं अभी फोन से आपके लिए सीट बुक करवा देता हूं, अगर आप कहें तो मैं आपके साथ चलूं। आप ज्यादा घबराई हुई लग रही हैं।"

ईषा को अनु के कहे शब्द बहुत अच्छे लग रहे थे। लगा, उसका पोर-पोर अनु का ऋणी हो गया है। ईषा को नहीं मालूम, उसने अनु पर इतना भरोसा कैसे कर लिया। ईषा स्टेशन पहुंच गई, वहां उसे अनु की प्रतीक्षा थी। परन्तु अनु तो उससे पहले ही पहुंच गया था। वह बुक स्टाल पर खड़ा एक पुस्तक 'बीच की औरत' के पन्ने उलट रहा था। तब तक ईषा ने उसे देख लिया। वह उसकी तरफ बढ़ चली। ईषा उसके ठीक बगल में खड़ी थी। अनु ने ईषा से कहा—"देखिए, 'बीच की औरत' के जीवन की तमाम त्रासदियों में मध्यवर्गीय नारी किस तरह जीने का रास्ता निकाल ही लेती है।"

ईषा ने कहा, "देखूं।" और उसने वह पुस्तक बुक स्टाल से खरीद ली।

दोनों प्लेटफॉर्म पर आ गए।

गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार से आकर खड़ी हो गई। दोनों गाड़ी में चढ़ गए। वे अपनी-अपनी सीट पर जा बैठे। ईषा के चेहरे पर परेशानियों की झलक थी, जिसे अनु पढ़ सकता था। बार-बार ईषा को बातों में उलझाए रखने का प्रयत्न करता। देर सुबह गाड़ी देहरादून स्टेशन पहुंची। दोनों स्कूटर रिक्शा से सनी के स्कूल पहुंचे। सनी मां को देखकर बेहद खुश हुआ।

ईषा ने अनु का परिचय करवाया, "सनी, यह अनु अंकल हैं। यह लखनऊ में विद्यालय में पढ़ाते हैं।" अंकल ने सनी को चाकलेट दी और प्यार भी किया।

अनु ने कहा, "आपके लिए आपकी मम्मी बहुत परेशान थीं बेटे। आपकी तबीयत को क्या हुआ था ? अब तो आप माशाअल्लाह बिल्कुल दुरुस्त लग रहे हैं।"

"हां अंकल, मुझे मम्मी बहुत याद आ रही थीं और मेरे एक्जाम भी शुरू होने वाले हैं न ?"

"अच्छा, तो आपकी मम्मी यहां रुक जाएंगी।"

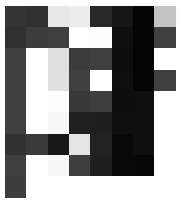

"नहीं-नहीं, अंकल ! यह मतलब नहीं। अब तो मम्मी को देख लिया हमने।"

"अच्छा-अच्छा। बस, मन भर गया ?" और सनी हंस पड़ा, ईषा भी मुसकराती जा रही थी। वह अनु को इतने करीब से देख पा रही थी। ईषा वहां दो दिन रही, सनी बहुत खुश रहा। सनी के प्रिंसिपल ने कहा, "मिसेज वर्मा, यू कैन गो नाव। नो प्रॉबलम, वी आर हियर, डोंट वरी।" और ईषा ने संतोषभरी सांस ली। उसने सर हिला दिया।

तीसरे दिन ईषा और अनु वापस आ गए। रास्ते भर अनु कितना खयाल करता रहा। ईषा को कब चाय चाहिए। "आप ओढ़ लीजिए ठंड बढ़ रही है। अब तो आप के मन पर कोई तनाव नहीं ?" और आत्मीयता भरी मुस्कान से ईषा ने अनु को ताका।

एक बार फिर वही गहरी दृष्टि ईषा के तन-रन्ध्रों में रजनीगंधा की कलियां बिखेर गई। बाहर हल्की बारिश होने लगी, नन्ही-नन्ही पानी की मोटी-सी बूंदें ट्रेन की खिड़की से भीतर आने लगीं। ईषा की कुहनी और हाथ भीगते जा रहे थे। और चेहरे पर अपार सुख झलक रहा था। अनु एक पुस्तक पढ़ रहा था, 'सागर और मोती'। बीच-बीच में ईषा के सांवले चेहरे पर जड़ी हुई काली बड़ी-बड़ी खंजनी आंखों को चुपके से देख लिया करता था। ईषा निमग्न होकर खिड़की से बाहर के प्राकृतिक सौन्दर्य को देख बेहद खुश हो रही थी। झरने, घने वृक्षों के घेरे, बादलों के उड़ते-भागते रंग-बिरंगे टुकड़े, पक्षियों का कलरव और उनके पंख फैलाए हवा में बिंदास स्वच्छन्द उड़ना, उसके अन्तर का विभोर होना, उसके गुलाबी, गालों पर रह-रहकर छलक जाता।

तभी अनु खिड़की का शीशा चढ़ाते हुए बोला "बहुत भीग जाएगी तो बीमार हो जाएगी। यह लीजिए, रूमाल से पोंछ लीजिए।" ईषा मंत्रमुग्ध-सी रूमाल को हाथ में ले एकाएक अनु के चेहरे को झांकने लगी। रूमाल पकड़ते समय अनु की गर्म हथेलियों का स्पर्श ईषा को भीतर तक आर्द्र कर गया और उसने झट से कुहनी को पोंछ लिया !

उसका मन बार-बार अनु के सुदृढ़ वक्षों का सहारा लेना चाहता है। पर नहीं, उसकी यह सोच कितनी कलुषित है। फिर झटके से इन विचारों

को दूर फेंक पुस्तक 'बीच की औरत' के पन्ने पलटने लगी। तभी अनु आकर ईषा की बगल में बैठ गया। धीरे से ईषा की अंगुलियों को थामकर उन्हें देखता रहता। ईषा ने प्रतिवाद नहीं किया। अनु के हाथों की पकड़ और मजबूत होती गयी है। "हां, ईषा ! मैं तुमसे प्यार करता हूं। बहुत ज्यादा। यह सब मैंने स्वार्थरत होकर नहीं किया ईषा। तुम मुझे गलत मत समझना। तुम मुझे बेहद अच्छी लगने लगी हो, बस इसलिए।" ईषा की भारी काली बरौनियां अपने आप झपकती गयीं। धीरे-धीरे न जाने कौन-सा सम्मोहन था कि ईषा ने अपना सर अनु के वक्ष पर रख दिया। वह अनु के भुजपाश में समा गयी। अनु ने ईषा की आंखों पर नेह के फूल टांक दिए। वह बोला, "अब तुम आराम करो ईषा?" ईषा लेटी और शीघ्र ही सो गई। अनु ने धीरे से कम्बल से ईषा का बंदन ढक दिया। सुबह गाड़ी स्टेशन पर पहुंच चुकी थी। ईषा के चेहरे पर ढेर सारे गुलाबों की खुशबू थी। ईषा ने महसूस किया, इतनी गहरी नींद उसे बरसों बाद आई। अनु और ईषा ने घर तक आने के लिए एक स्कूटर ले लिया। दोनों बहुत करीब थे।

अनु ने पूछा, "पहले आपको ड्राप कर दूं।" ईषा ने मुसकुराहट भरे नैनों से हामी भर दी।

ईषा का घर आ गया था। "अच्छा, चलता हूं ईषा !"

"नहीं, अन्दर तो आओ, चाय पीकर जाना।"

और अनु सामान सहित ईषा के पीछे-पीछे घर की चौखट पर खड़ा था। ईषा ने चाय बनाई। अनु बोला, "सचमुच चाय पीकर बहुत अच्छा लगा।" दोनों कुछ देर गुमसुम बैठे रहे। एक-दूसरे से बहुत कुछ कहना चाहते थे पर दोनों के अधर मौन, नेत्र वाचाल थे। थोड़ी देर बाद अनु बोला, "अच्छा, चलता हूं। अब नहा धोकर आराम कीजिए।"

ईषा ने स्वीकृति में सर हिलाया। वह अनु को छोड़ने बाहर गेट तक आई। अनु ने एक बार फिर उसी गहरी दृष्टि से ईषा की ओर ताका और ईषा सम्मोहित हिरनी जैसी उसके वक्ष से जा लगी। दोनों ही प्यार में डूब गए। फिर अकस्मात् ईषा अलग होती हुई बोली, "आई एम सॉरी अनु ! हमें ऐसा नहीं करना चाहिए।" उत्तर में अनु ने ईषा के माथे पर

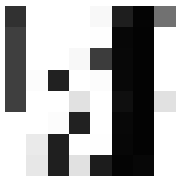

अपने होंठ रख दिए और तुरन्त चला गया।

ईषा घर की सफाई बगैरह खत्म करके नहाने जा रही थी, तभी मिसेज चोपड़ा आ गई। "अरे मिसेज वर्मा, कैसा है आपका बेटा?"

"जी ठीक है। कुछ घबरा गया था, इम्तहानों के दिन आ गए न, इसलिए।"

"उसकी तबीयत तो ठीक है?"

"हां, अब वह ठीक है।"

"अच्छा मैं चलती हूं। अरे ईषा, देहरादून तुम अकेली ही चली गयी थी या कोई साथ में था?"

ईषा ने मिसेज चोपड़ा की बात को काटते हुए कहा, "बैठिए न मिसेज चोपड़ा, चाय पीजिए।"

"अरे नहीं, अब उनके आने का समय हो गया है। मैं चलती हूं।" ईषा ने चैन की सांस ली।

नहा धोकर ईषा सोने का उपक्रम करने लगी। पर नींद तो परायी हो गयी थी। वह जब भी नयन बन्द करती, उन दो पलकों के बीच अनु आकर बैठ जाता। वह सफर में बिताये अनेक यादों के खजाने लुटा जाता।

तभी फोन की घण्टी बजी, ईषा सोच रही है—किसका फोन हो सकता है? कहीं ललित का ट्रंककाल तो नहीं—दौड़कर रिसीवर उठाती है, "हैल्लो!"

"हाय ईषा! मैं। अनु हियर। कैसी हो?"

कुछ क्षण को निरुत्तर रही ईषा। पुनः बोली, "ठीक हूं।"

"क्या कर रही हो?"

"कुछ नहीं, बैठी थी।"

"अच्छा, मैं शाम को आऊंगा। कोई काम हो तो बताओ। कुछ मंगाना हो तो लेता आऊंगा। तुमने खाना खा लिया?"

"अभी नहीं।"

"तो खा लो, अब तो तीन बज रहे हैं। अच्छा, रखता हूं।"

ईषा ने फोन का रिसीवर रख दिया। वह फफक-फफककर रो पड़ी।

क्यों उसके इतना करीब आता जा रहा है अनु, क्यों उसे कमजोर बनाता जा रहा है ? उसका अपना परिवार होगा, मेरा भी फिर यह सब क्या है। आज वह अनु से कहेगी और कल से उससे नहीं मिलेगी।

ईषा ने अपने आंसू पोंछ लिये। बाथरूम में जाकर मुंह धोया। खाना खाकर ललित को पत्र लिखने बैठ गयी। ईषा पत्र लिखती जा रही है और सोचती जा रही है। ललित ने एक भी खत नहीं डाला, न ही फोन किया। ईषा ने मन को समझाया। तो क्या हुआ ? बिज़ी होगा। ईषा ने खत में सब लिख दिया कि वह अनु के साथ गयी, अब सभी ठीक है। तुम चिन्ता मत करना और जल्दी आना, अपना ध्यान रखना।

लिफाफा बन्द कर दिया और लेट गयी। तभी घण्टी बजी। उसे मालूम था, अनु होगा ? धीरे-धीरे काल बेल तक गयी और दरवाजा खोला। सामने अनु ही था। ईषा ने कहा—"आइए।" और अनु ईषा के पीछे-पीछे ड्रॉइंगरूम में आ गया। ईषा चाय बनाने चली गयी।

"यहां बैठो, ईषा।" ईषा चुपचाप बैठ गयी। "ईषा तुम मुझे गलत मत समझना। मैं तुम्हें चाहने लगा हूं, यह महज मेरी मजबूरी है, स्वार्थ नहीं है इसमें।

ईषा ने कहा, "फिर भी तुम्हारा परिवार होगा, पत्नी, बच्चे ?" हां जरूर हैं ईषा, मैंने यह सब जान-बूझकर किसी प्लानिंग से तो किया नहीं है।"

"फिर भी अनु, मेरी जिन्दगी को पत्थरों के सागर में ही रहने दो, मुझे बाहर मत निकालो। तुम अब मत आना।"

"क्या तुम यह सहन कर पाओगी ? स्वयं से पूछ लो।" अनु ने आकर ईषा को अपनी भुजाओं में बांध लिया। ईषा सम्पूर्ण रूप से सम्मोहित हो गयी। वह प्रतिवाद नहीं कर पायी। न ही एक थप्पड़ मारकर अनु को ठुकरा पायी। वह तो प्यार के इस अथाह सागर में डूबती गयी···डूबती गयी। अब तो अनु ही उसकी दुनिया है। अनु के बगैर जीवन जीना उसके लिए दूभर हो गया है।

उसे हर पल अनु की प्रतीक्षा रहती है। उसके जीवन में अनु आता गया। दोनों प्यार के सागर में डूबते-उतराते गये।

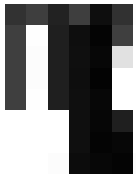

अकस्मात् उस दिन ईषा के निरन्तर प्रतीक्षारत रहने पर भी अनु नहीं आया। बरसाती हवा के झोंके से दरवाजे पर लगा परदा बार-बार हिलता। अपने इर्द-गिर्द एक काली परछाई छोड़ जाता। ईषा के कान सर्तकता से हर आहट सुन रहे हैं। ईषा को विश्वास होता गया, अनु नहीं आयेगा। रात का एक-एक पल उसने घड़ी की सुइयों पर टकटकी लगाकर बिताया। ईषा ने निश्चय किया—कल वह अनु से मिलने उसके घर जायेगी। वह तैयार होने चल दी। इसी बीच किसी के आने की आहट पर वह लौट पड़ी।

"अरे अनु, तुम?" अनु का तपता चेहरा और ज्वर से तप्त माथा देखकर ईषा घबड़ा गयी। "तुम्हें तो बहुत बुखार है अनु।"

"हां ईषा, इसी से कल नहीं आ पाया।"

"तुम आराम से लेट जाओ अनु।"

"ईषा, तुम यहीं बैठो, मेरे पास। आज तुमसे कुछ नहीं छुपाऊंगा ईषा। जब पहली बार हमने तुम्हें देखा था तभी से न जाने कौन-सा आकर्षण मुझे तुम्हारी तरफ खींचता गया। मैं विवाहित हूं। मेरी पत्नी एक अमीर बाप की बेटी है।

"हमारे विवाह में हमारी पारिवारिक विषमताएं आड़े आयीं। परन्तु उस समय शशि पर, प्यार का उन्माद छाया था। उसने मुझसे विवाह करने की जिद ठान ली। हम दोनों ने कोर्ट मैरेज कर ली। हम दोनों एक-दूसरे के प्यार के सहारे जीने लगे।

"समय के खरगोशी पांव पांच वर्ष आगे बढ़ गये। हम दोनों दो बच्चों के मां-बाप बन गये। धीरे-धीरे जरूरतें बढ़ीं। मैं ठहरा अंग्रेजी का एक साधारण प्राध्यापक। मेरी छोटी-सी तनखाह में शशि की ज़रूरतें हमें हमसे दूर करती गईं। बच्चे की परवरिश के लिए आया न रख सका। उसकी पिकनिक पार्टियों और पपलू का जमघट मुझे जिन्दगी जीने का हर सबब भुलाता गया। शशि अपने खर्चे नहीं कम कर पायी। एक दिन वह मुझे मेरी गरीबी का वास्ता देकर बच्चों को लेकर अपनी मां के घर चली गयी। विद्यालय से आने पर मुझे पड़ोस के घर से एक खत और चाबी मिली। मैं अवाक् था ईषा। मैं टूटता गया।

शशि और बच्चों के बिना मेरा मन घर पर एक पल भी नहीं लगता । मैं स्वयं को लेखन में उलझाने लगा । कीट्स-शैली पढ़ता । परन्तु वहां भी वही दर्द । मेरी पीड़ा और बढ़ा जाते । एक दिन हारकर मैं स्वयं शशि को वापस लेने गया । मैंने शशि से कहा—'मैं तुम्हारी हर इच्छा की पूर्ति करने की कोशिश करूंगा । मैं और भी काम कर लूंगा ।' बच्चों को मैंने प्यार से गोद में लेना चाहा, शशि ने साफ शब्दों में कह दिया, 'नहीं अनु, मेरे ऊपर प्यार का चश्मा और भूत सवार था । मुझे तो बच्चों के भावी जीवन की सोचना है । बच्चे मेरे ही पास रहेंगे । तुम मेरी तरफ से आजाद हो ।' मेरी इच्छा हुई थी एक करारा थप्पड़ शशि के गाल पर जड़ दूं । परन्तु ऐसा नहीं कर सका । प्यार जबरदस्ती मांगकर किया नहीं जाता है न ईषा । अतः मैं चुपचाप चला आया ।

"मैं शशि और टिंकी-पप्पू के बगैर टूटता गया । मैं चाहता तो तलाक लेकर दूसरी शादी भी कर लेता पर तुम्हीं बताओ ईषा, क्या व्यापार-प्यार में कोई अन्तर नहीं ? यह सच है कि शशि के साथ बिताये प्यार के क्षण मैं कभी नहीं भूलूंगा फिर भी उसके अमीरी के जोश, जो उसकी नसों में व्याप्त हैं, उन्हें भी नहीं भूल पा रहा हूं ईषा ! इन्हीं उधेड़-बुन के दिनों में जब मैं वेतन लेने बैंक गया था, तुम्हें देखा—कितना सौम्य चेहरा । स्नेह से अनुरंजित तुम्हारी दो आंखें । मैं तुम्हारी ओर खिंचता गया । जाने-अनजाने में जो पाप मुझसे हो गया, उसके लिए मैं अपनी अन्तरात्मा को भी कभी क्षमा नहीं करूँगा ईषा । मेरे सहयोग स्नेह का अर्थ तुम्हारा शरीर कभी नहीं था, ईषा ! मात्र प्यार था, जिसकी मुझे तलाश थी और जिसकी शृंखला मैंने तुम्हारे मौन स्नेह में पायी । अब तुम मुझे क्षमा कर दो । मैंने तुम्हारे परिवार के प्रति विश्वासघात किया है ।

"तुम किसी की पत्नी हो, मुझे तुम्हारे साथ ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए था । अब मैं तुम्हारे साथ कभी शारीरिक सम्बन्ध नहीं रखूंगा । मैं तुम्हें हर पल प्यार करूंगा, सिर्फ तुम्हें । जीवन के शेष दिन सिर्फ तुम्हारी स्नेहिल आंखों की सम्मोहन भरी यादों के सहारे बिता लूंगा ।"

बुखार से तप्त अनु का शरीर सोफे पर लुढ़क गया । ईषा हतप्रभ थी । उसने अनु का सर अपनी गोद में ले लिया और प्यार से सहलाया, "तुम

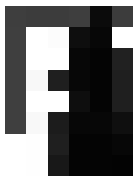

चिन्ता मत करो अनु, मैं डॉ० को फोन करती हूं। यस डॉ० जैन, प्लीज आप आ जाइए। यहां मि० अनु की तबीयत खराब है।"

थोड़ी ही देर बाद डॉ० जैन पहुंच गये थे। उन्होंने अच्छी तरह अनु का चेकअप किया। वह बोले, "घबराने की कोई बात नहीं है। ईषाजी, यह दवाएं मैं भेज देता हूं। हां, समय से यह दवाएं दे दें।" ईषा डॉक्टर साहब को दरवाजे तक छोड़कर वापस आयी। उसने अनु को अपने बिस्तर पर लिटा दिया। कम्बल ओढ़ा कर माथे पर पानी की ठण्डी पट्टियां रखती रही। थोड़ी देर बाद बुखार कम हो गया। अनु सो गया। ईषा ने स्कूल फोन से बताया, वह तीन दिनों की छुट्टी ले रही है। ईषा पास ही रखी कुर्सी पर बैठ गयी। रात का तीसरा प्रहर, ईषा की आंख लग गयी। सुबह अनु की आंख खुली, उसने देखा, ईषा कुर्सी पर ही सो गयी है। ईषा की नींद खुल गयी। "ईषा तुम रात यहीं बैठी रही।"

ईषा ने मुसकुराहट बिखेरते हुए कहा, "अब कैसे हो?"

"अच्छा हूं।" ईषा ने बुखार नापा कम था, "तुम्हारा यह उपकार नहीं भूलूंगा।" ईषा मुसकुराती हुई चली गयी।

अनु ईषा को जाते हुए देखता रहा। ईश्वर ने मुझे ईषा से शायद इसी दिन के लिए मिलाया। कितनी स्नेही है ईषा। तभी चाय लिये ईषा आ पहुंची।

दोनों ने चाय पी। खिड़की से भीतर आती हुई सुबह की शुद्ध साफ हवा कमरे में भर गयी थी।

"हाउ आर यू फीलिंग नाव अनु?"

"वेरी फाइन ईषा, मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूं।"

"इतना अजनबीपन ठीक नहीं है अनु।"

दोनों के होंठों पर मुसकान खेल गयी।

"इस क्षण तो मैं ठीक हो चला हूं। अब मुझे घर जाना ही चाहिए।"

ईषा चुप रही।

सुबह अनु तैयार हो गया। ईषा से जाने की अनुमति मांगने लगा। ईषा ने आर्द्र नेत्रों से अनु को निहारा। अनु का रिक्शा अब आंख से ओझल हो गया था। अनु ने घर के दरवाजे पर लटका ताला खोला। उसके घर

के कमरे में व्याप्त अपार नीरवता उसे बार-बार बेटी टिंकी की तोतली बोली की याद दिला रही थी। उसके खिलौने अनु ने सम्भाल कर अपने सोने के कमरे में सजा रखे थे। डमरू बजाता बन्दर, हाथी और पक्षियों का पूरा सेट। अनु की अंगुलियां उस पर जमी हुई धूल को झाड़-पोंछ रही थीं। तभी उसे शेल्फ पर रखी विवाह की फोटो दिखाई पड़ी। प्रथम दिनों में प्यार के वह तमाम प्रसंग अनु को झकझोरते रहे। जब से टिंकी को लेकर गयी है, कुछ भी तो हाल नहीं मिला। पता नहीं कैसी होगी टिंकी।

अनु को क्या खबर थी। शशि के मायके में रहते इन 6 माह के भीतर कभी अपना घर याद आया या नहीं। मेरी टिंकी भी अब दो वर्षों की हो रहा है। इधर शशि जब से मायके आकर रहने लगी है। इन वर्षों में अजीब-सा परिवर्तन महसूस कर रही है। पहले जैसी आव-भगत कहां रही। उसका मन भारी बोझ तले दब गया। जब उसने सुना कि भाभी भइया से कह रही थी, "जब से बीबी जी यहां रहने लगी हैं, घर का सारा खर्च बढ़ गया है। तुम जानते ही हो अब वो दिन नहीं रहे। बहुत सारा पैसा बाबू जी-अम्मा के बीमारी पर खर्च हो जाता है। महंगाई बेइन्तहा है। दूध का बिल भी अबकी 500 रु० आया है। ऐसे में शशि को भी सोचना चाहिए। उसे इस तरह अपनी गृहस्थी छोड़कर यहां रहना कितना वाजिब है सोमेश ?"

सब कुछ ठीक है स्वाति फिर भी अपनी बहन है। हम उससे कुछ कह तो नहीं सकते न ? वह पहले ही दुःखी है।"

"यह दुःख तो उसके स्वयं का उपजाया है। भला इस तरह कोई अपना शौहर, अपना घर छोड़ देता है? शशि तो खुद पढ़ी-लिखी है। मगर अनु उसे ऐसा आराम नहीं जुटा पाता।"

"तो वह स्वयं भी कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेती ?बजाय···"

"अब चुप भी रहो स्वाति ! कहीं शशि ने सुन लिया तो वह क्या सोचेगी। फिर वह तो अम्मा-बाबू जी के भरोसे आयी है।"

"ठीक है। मैंने अगर कुछ बेजा कह दिया। ऐसा तो नहीं।" पास ही दरवाजे के पीछे शशि के कदम ठिठक गये। उसने जो कुछ भी सुना, नश्तर से कम नहीं था। उसका मन इस प्रकार अपने ही घर में पराया

होने की बात आज तक नहीं सोच पाया था। शायद भाभी ठीक ही कहती हैं। ब्याह के बाद मां का घर बेटी के लिए पराया हो जाता है। उसे यह समझना चाहिए था। उसकी आंखें छलछला तो आयीं पर पलकों के दायरे के भीतर ही। उसके कदम वापस अपने कमरे की तरफ बढ़ गये। पलंग पर तकिये का सहारा लिए औंधी लेट गयी।

बहुत देर तक सोचती रही। भाभी ठीक ही तो कहती हैं. मुझे अपना बोझ किसी पर लादने का बिल्कुल हक नहीं है। मैं यहां से चली जाऊंगी। पहली बार ही जब अनु उसे लेने आया था, तभी वापस अपनी गृहस्थी में लौट जाना चाहिए था। खैर, अब मैं ऐसा ही करूंगी। वह पेन लेकर पैड पर अनु को पत्र लिखने बैठ जाती है। कई बार कागज पर लिखती, काटती और मरोड़ कर फेंक देती। बहुत-सी हिम्मत बटोरकर उसने अनु से मांफी मांगी। और टिंकी के ढेर सारे प्यार का उलाहना देती हुई उससे विनती की वह उसे आकर ले जाये। शशि की आंखों पर से विलास का चश्मा उतर चुका था। पत्र वह स्वयं पोस्ट करने गयी। आज उसका मन हल्का लग रहा था। उसे अब अनु के आने का इन्तजार था। अनु आज बेहतर महसूस कर रहा था। वह नाश्ते से निबटने के बाद तैयार होकर निकलने लगा। एक लिफाफा गेट पर पड़ा देख उठा लिया। पता जानी-पहचानी राइटिंग में था। खोल कर पढ़ते ही अनु का मन रोमांचित हो उठा। यह तो शशि का पत्र है। लिफाफा जल्दी से खोल कर पढ़ गया। मुझे बुलाया है। हां, मैं जाऊंगा। अपनी टिंकी को वापस लाऊंगा। उसने पलंग की चादरों से लेकर रसोई तक सारी व्यवस्था ठीक-ठाक कर ली। खाने-पीने का जरूरी सामान ले आया। दूध वाले से कहता गया। कल से ज्यादा दूध लाना। सुबह की गाड़ी से वह कानपुर पहुंचा। सारे रास्ते एक अजीबोगरीब उथल-पुथल उसके मन में थी।

रिक्शा करके इन्द्रानगर कालोनी पहुंचा। अम्मा, बाबू जी सब उसे देखकर हैरान रह गये। उसे मालूम था। उसको यह पत्र शशि ने चुपके से डाला होगा जिसका जिक्र उसने किसी से नहीं किया। वह बातचीत कर ही रहा था कि शशि टिंकी का हाथ पकड़े वहां आ गयी। दोनों के नेत्र मिले। कितने कमजोर हो गये हो, दोनों ने मन-ही-मन एक-दूसरे के लिए

सोचा। "टिंकी, जाओ पापा के पास।"

"आओ बेटे" और अनु ने बढ़कर अपनी बेटी को कलेजे से लगा लिया। कितना सकून मिला उसे।

"आप मेरे साथ चलेंगे न बेटे ?" अनु पिता जी से बोला—"पापा जी, मैं शशि को लेने आया हूं।"

"यह तो खुशी की बात है अनु।"

"कल सुबह की गाड़ी से जाना है।" पिता जी ने रुकने को कहा पर अनु ने सुबह ही जाने का अनुग्रह किया। शशि जाने की तैयारी में लग गयी।

शाम तक अनु घर पहुंच गया। आज अनु कितना खुश है, कैसे बताये। उसकी पत्नी, उसका बच्चा उसके साथ हैं। आज उसका घर घर लग रहा है। अनु के विद्यालय की छुट्टियां चल रही हैं।

अनु को लगा ईषा के साथ वह अपनी खुशी बांटेगा। ईषा का ध्यान आते ही वह उसके घर की ओर मुड़ गया।

घण्टी बजते ही दरवाजा खोला। सामने ईषा थी। "ओह, अनु ! आओ। भीतर आओ।" आज अनु ने नोट किया ईषा के चेहरे पर एक मासूम-सा सकून था। "बैठो मैं काफी लाती हूं।" सन्देश की प्लेट अनु की तरफ बढ़ाती हुई ईषा बोली—"ललित कलकत्ता से लाये हैं।" उसने दो बंगाली साड़ियां भी अनु को दिखायीं।

"बहुत सुन्दर हैं, ईषा। मि० ललित की पसन्द बहुत अच्छी है।"

और अनु द्वारा पति की तारीफ़ सुनकर ईषा मुसकुरा उठी।

"हां, तुम कैसे हो अनु ?"

"मैं अब बिल्कुल ठीक हूं।"

"दवा लेते रहना।"

"अब तो मैं बिल्कुल ठीक हूं ईषा ! मैं तुम्हारे पास से जिस दिन गया, उसके दूसरे ही दिन शशि का खत आया। उसने यहां मेरे साथ रहने की इच्छा व्यक्त की थी। उसने मुझे लिखा कि मैं आकर उसे ले जाऊं और आज ही सुबह मैं उसे और टिंकी को लेकर आ गया। अब घर भरा-भरा लगता है ईषा ! शायद तुम्हारा मिलना मेरे लिए बहुत शुभ सिद्ध हुआ। मेरी

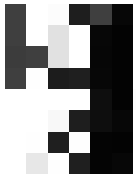

दुनिया फिर से बस गयी है। इसका श्रेय मैं तुम्हें ही देता हूं। मुझे माफ करना ईषा।"

"फिर आना अनु, बच्चों और मिसेज अनु को लेकर आना।"

ईषा की दृष्टि अनु के बाहर जाते हुए कदमों से जुड़ी रही।

पिंजरे का सुख

नीता जल्दी-जल्दी ऑफिस की सीढ़ियां उतर रही थी। सीढ़ियां उतरते हुए उसकी सांस तेज़ी से चल रही थी। अपने को संयत करती हुई नीता झट से सड़क पार कर, बस स्टाप की तरफ़ मुड़ गयी। स्टाप पर बस-यात्रियों की लम्बी भीड़ देख नीता हैरान नहीं हुई। यह दिल्ली की बसें, व्यस्तता, भीड़ में उगता एकाकीपन। यह सब कुछ उसके लिए आम बात बन गई थी।

आज पिछले 10 वर्षों से नीता अपने ब्याह के बाद से दिल्ली में ही रह रही है। उसका मायका लखनऊ के पास गोंडा जिले में था। विवाह के प्रथम दिनों में नीता को दिल्ली की चौड़ी सड़कें, उनकी चहल-पहल, रोशनी, सजी-संवरी स्मार्ट औरतें, घूमने की इतनी सारी जगह, रोशनी से जगमगाता शहर, बहुत भाया था।

धीरे-धीरे विवाह के दस वर्ष बीत गये। इन वर्षों में उसने दिल्ली का असली चेहरा पढ़ लिया था। इस महानगर में पांच सितारा होटल के पास के फुटपाथ पर बसर करने वाली जिन्दगियों को लेकर कितनी बार उद्वेलित हुई थी नीता। लेकिन कुछ भी नहीं बदल पायी थी वह।

बस अभी तक नहीं आयी। आसमान पर बटुरता हुआ कालापन नीता को आतंकित कर रहा था। तभी लाइन में खड़े वृद्ध सज्जन ने बस की तरफ़ इशारा किया। बस के रुकते ही नीता भी लपकी और सीट पर जाकर बैठ गयी।

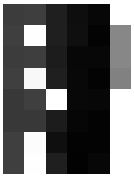

थोड़ी बूंदा-बांदी भी शुरू हो गयी। फागुन महीने की हवा, बदन को छूती तो एक रोमांचक उत्साह दे जाती। मगर नीता को यह हवा चुभती रही। बस लालकुआं स्टाप पर पहुंच चुकी थी। नीता बस से उतरी। उसके कदम तेजी से घर की ओर चल पड़े। कॉलबेल पर हाथ धरते ही उसकी सास ने दरवाजा खोला। "आ गईं रानी साहिबा। यहां हम सब परेशान हो रहे हैं।"

नीता ऐसे मौके पर अकसर चुप ही रहती है। जल्दी से कमरे में जाकर कपड़े बदले और रसोई में चाय बनाने चली गयी। चाय की ट्रे लेकर नीता पहले मां जी के पास गयी। माथे पर बल डालती हुई मां जी बोलीं, 'रख दो यहीं।" नीता सर झुकाये वहां से हट गयी। विराज को प्याला थमाती हुई बोली, "देर हो गई विराज ! आज सारे डाक्यूमेण्ट्स तैयार करके हेड ऑफिस भेजना था।" विराज चुप रहा। उसके भौंहों का उतार-चढ़ाव नीता को उसकी मनोभावना की सूचना दे रहे थे। "तुम तो जानते ही हो विराज ! बैंक में क्लोजिंग चल रही है।"

"हां, जानता हूं, सब कुछ जानता हूं। मिसेज खन्ना कैसे जल्दी आ जाती है ?"

"वह तो डी० एम० की रिश्तेदार हैं। अपनी मर्जी की मालिक। मेरा भला उनसे क्या मुकाबला !"

विराज ने चाय पी ली तो नीता बच्चों के कमरे में गयी। निशा और ईशा दोनों अपनी मेज पर बैठी पढ़ रही थीं। मां को देख प्यार से उसके गले में झूल गयीं। "मम्मा, आपने बहुत देर लगा दी ?"

"हां बेटे, इस महीने तो इसी तरह देर-सवेर लगेगी।" नीता ने दोनों बेटियों के गाल चूम लिये।

नीता रसोई में जाकर खाना बनाने की तैयारी में लग गयी। हाथ काम कर रहा था और मन, हृदय पर रखे तमाम जख्मों को ताजा करता जा रहा था। आठ वर्ष पहले उसे इस तरह भागदौड़ नहीं करनी पड़ती थी। विराज के बैंक से आते ही वह मुसकुरा कर उसका स्वागत करती थी। निशा तब दो वर्षों की थी। मां जी को कभी शिकायत का मौका नहीं दिया उसने। जब कभी किसी काम को वह करना चाहतीं;

नीता कहती, "मैं हूं न मां जी, आप आराम कीजिए।" वह भी अपने भजन-कीर्तन और मंदिर के प्रवचनों में व्यस्त रहतीं।

वह दिन नीता के दामन की सारी खुशियां लपेट ले गया। विराज को ऑफिस के कार्य से शिमला जाना था। वहीं एक सड़क-दुर्घटना में विराज की टांगें···। उफ, नहीं, वह बीता हुआ कल नहीं सोचेगी। तभी कुकर की सीटी बज उठी। जल्दी-जल्दी फुलके सेक कर मां जी को खाना पहुंचा आयी। मां जी अपने कमरे में ही नाश्ता-खाना खाती हैं। उन्हें छूत का बहुत डर रहता है। खाना देखकर फिर उन्होंने जुमले जोड़े, "आधापाधी में खाना क्या बनता है, बस पेट भरना है। दो रोटी ही तो खुराक रह गयी है।"

नीता मां जी की बातों का ज्यादा जवाब नहीं देती। वह विराज को किसी प्रकार भी दुःखी नहीं करना चाहती। जब से वह चलने-फिरने से मजबूर हुआ है, नीता की तो दुनिया ही बदल गयी है। ऑफिस में नीता को विराज की जगह ही वर्कशिप मिल गयी है। इस महंगाई के समय में पांच लोगों का खर्च और नीता अकेली कमाने वाली। फिर भी विराज के प्रोविडेण्टफ़ण्ड इत्यादि से काम चलता रहा। इसी बीच ईशा की पैदाइश से मां जी और विराज का व्यवहार नीता के प्रति और रूखा हो चला। आखिर इसमें उसका क्या दोष? उसने तो लाख मनाया था विराज को लेकिन विराज ने घर के चिराग और वंश-निर्माण का हवाला दिया था। फिर ईशा का जन्म मां जी की तानेबाजी में बढ़ोतरी कर गया।

सुबह नीता जल्दी-जल्दी निशा, ईशा को स्कूल के लिए तैयार करती फिर विराज के लिए खाना। मां जी तो चाय पीकर मन्दिर चली जातीं। लक्ष्मी आ गयी थी। नीता की जान में जान आ गयी, "हटो दीदी, अब मैं सब कर लूंगी।" नीता जल्दी-जल्दी तैयार होकर विराज के पास गयी। उसका नाश्ता, दूध, दवाइयां सब समझा गयी। विराज की चुप्पी नीता की जिन्दगी के चारों तरफ नागफनी के जंगल उगा जाती। जैसे वह ऑफिस नहीं, किसी कोठे पर जा रही हो। उसका अपराध-बोध उसे जीवन के प्रति उदासीन बनाता गया। मुसकराहटों की मरीचिका विराज की तरफ उलीचती नीता बोलती, "मैं चलती हूं विराज! मुझे देर हो जाये तो

4

घबराना नहीं। मैं काम खत्म होते ही चल दूंगी।"

विराज नीता को तब तक घूरता रहता जब तक वह कमरे से बाहर सीढ़ियां नहीं उतर जाती। ऑफिस पहुंचते ही वह काम में उलझ गयी। उसकी गोरी उंगलियां फाइलों के पन्नों में लिपटी रहीं। लंच, ब्रेक भी उसने नहीं लिया। उसे हर कीमत पर आज समय से घर पहुंचना है। फाइल पूरी करते-करते ७ बज गये। फिर जोरों की बारिश, काले बादलों ने आसमान को अपनी बांहों में समेट लिया। नीता घर जाने के लिए बाहर निकल ही रही थी, कि मिस्टर जैन ने उसे आवाज़ दी। "नीता जी, इतनी बारिश में कैसे जायेंगी ? चलिए मैं आपको छोड़ देता हूं।"

"नहीं सर, मैं चली जाऊंगी, बारिश थम जायेगी।"

"नहीं, नीता जी, यह बारिश अभी नहीं थमने वाली।" मिसेज खन्ना ने कहा। "कोई बात नहीं, मैं भी चलती हूं। मि० जैन मुझे भी छोड़ देंगे।"

"हां-हां, क्यों नहीं।"

नीता, मिसेज खन्ना के साथ आकर गाड़ी में बैठ गयी। ज़ोरदार बारिश और बे-मौसम की तेज़ हवाएं। नीता ने खिड़की बन्द करनी चाही। मि० जैन ने जल्दी से खिड़की बन्द कर दी। मिसेज़ खन्ना का घर आ गया था। "अच्छा, थैंक यू मि० जैन! दैट्स ऑल राइट।" नीता अपने बॉस के साथ अकेली गाड़ी में बैठी थी। वह संकोच से गड़ी जा रही थी।

मि० जैन ने पूछा, "अब कैसे हैं मि० शाह ?"

"अब बेहतर हैं। दवाएं चल रही हैं।" थोड़ी चुप्पी रही। नीता का घर आ गया था। नीता ने कहा, "बस यहीं सर!" उसने कार से उतरते हुए मि० जैन को नमस्कार किया और धन्यवाद दिया।

"कोई बात नहीं मिसेज शाह अब आप भीग रही हैं।"

नीता सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते सोच रही थी, उसने सर को औपचारिकता के नाते भी घर तक आने को नहीं कहा। उनका इस तरह आना विराज को दुःख पहुंचाता। पानी की कुछ बूंदें उसके बालों और ब्लाउज़ पर अधिकार जमाए बैठ गयी थीं। अपने भीगे हाथों को पोंछती नीता भीतर

घुसी। दरवाज़ा खुला था। रोज की तरह चाय बनाने वह रसोई में नहीं गयी। सीधे बच्चों के कमरे में गयी। निशा और ईशा सो रही थीं। वापस विराज के पास गयी। वहां मेज पर विराज का नाश्ता, खाना पड़ा देखकर उसके स्नायुतन्तुओं में एक ज़ोरदार झटका लगा। उसने विराज से पूछा, "विराज, तुमने यह क्या किया ! इस तरह खाना नहीं खाओगे, आखिर क्यों ? क्या किया है मैंने ? क्यों तुम मुझसे नाराज हो ? क्या दोष है मेरा ? तुम कहो तो मैं यह नौकरी छोड़ दूं, नहीं जाऊंगी कहीं। यहीं रहूंगी तुम्हारे साथ, तुम्हारे बच्चों के साथ। **हर नारी को अपना पिंजरा ही प्यारा होता है विराज ! इस पिंजरे का सुख उसकी अन्तरात्मा तक में रस-बस जाता है। और यदि कोई इस पिंजरे का दरवाज़ा खोलकर बाहर जाने की बात कहे भी तो ऐसा वह नहीं करती।** मुझे समझने की कोशिश करो विराज ! मैं नौकरी छोड़ दूं तो निशा और ईशा की पढ़ाई, शादी-ब्याह— सब कुछ कैसे होगा ?"

इतनी देर नीता को सुनते रहने के बाद अचानक विराज तेज आवाज में बोला, "अब बस भी करो नीता ! तुम बोलती रही, मैं सुनता रहा। मैंने यह कब कहा है कि तुम नौकरी छोड़ दो।" अचानक विराज के माथे की गहरी शिकनें गायब हो गयीं, तनिक ठहर कर मुट्ठियां भींचकर बोला, "तुम्हारा इस तरह बन-ठनकर बाहर जाना, इतनी रात गये घर की चौखट पर कदम रखना—और आज तो तुम्हारा बॉस तुम्हें गाड़ी में छोड़ गया है—बीमार पति से धोखा, पराये मर्दों के साथ आवारागर्दी की छूट, मैं तुम्हें नहीं दूंगा नीता। कान खोलकर सुन लो। तुम यह नौकरी छोड़ देने की धमकी मुझे मत दो। हां, शरीफ़ औरतों की तरह समय से घर आ जाओ।" विराज झटके से तकिये का सहारा लेकर लेट गया।

"मैं तुम्हें इतना तंगदिल इंसान नहीं समझती थी विराज ! मेरी पूजा को, मेरे प्यार को सन्देह के विषजल में डुबो दिया है तुमने। तुम्हारा ऐसा सोचने का साहस कैसे हुआ ? मैं कल ही रेजिगनेशन लेटर भेज दूंगी।" नीता कमरे से बाहर आयी।

नीता ने अपने लेटर पैड पर रेजिगनेशन लेटर लिख दिया। उसे मिसेज़ खन्ना को दे आयी। उन्होंने पूछा, "आज नहीं जा रही हो ?"

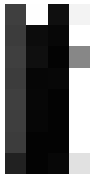

"नहीं मिसेज खन्ना ! तबीयत ठीक नहीं।"

आज वह घर पर है। उसने विराज को नाश्ता, अपने सामने बैठ कर कराया। नीता के ऑफिस जाने का समय हो गया मगर नीता रसोई में खाने की तैयारी में लगी रही। विराज की दवा लेकर नीता उसके कमरे में आयी, तो उसने पूछा, "आज तुम ऑफिस क्यों नहीं गयी ?"

"नहीं जाऊंगी। तुम्हारा और मां जी का रवैया मुझे और नौकरी नहीं करने देगा।"

विराज अवाक् था। शाम ढल रही थी। विराज के चेहरे की शिकनें बढ़ती जा रही थीं। अचानक काल-बेल बज उठी। नीता ने दरवाजा खोला। सामने मि० जैन खड़े थे, "आइए सर !"

मि० जैन विराज के कमरे में आ गये। "कैसे हैं मि० शाह ? बहुत दिनों से आपसे नहीं मिला था। सोचा आज का दिन ठीक रहेगा।"

नीता चाय बनाने चली गयी मि० जैन ने अपनी जेब से नीला लिफाफा निकालकर विराज की ओर बढ़ाया। "यह क्या है सर !"

"खुद ही देख लीजिए मि० शाह।"

विराज ने लिफाफे के अन्दर रखा कागज खोलकर पढ़ा। और अवाक् रह गया। "यह उसका बचपना है सर ! वह नौकरी नहीं करेगी तो···" विराज का गला भर आया था।

मि० जैन ने उसे समझाते हुए कहा, "बी रिलैक्स्ड मि० शाह ! नीता की तरह की कितनी औरतें घर से बाहर काम करती हैं, सुख-सुविधा जुटाती हैं और समाज उन्हें क्या देता है ? लांछन और अपमान। नीता एक समझदार और सिनसियर वर्कर है। उसके प्रोमोशन के अच्छे चान्सेज़ हैं मि० शाह !"

विराज सब कुछ आंख बन्द किये सुनता रहा। आत्मग्लानि से भरा उसका चेहरा स्याह हो गया था।

इतने में नीता चाय लेकर आ चुकी थी। विराज ने नीता से कहा, बैठो नीता। यहां मेरे पास।"

उसने उसके सामने रेजिगनेशन लेटर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। नीता का सर विराज के वक्ष पर टिक गया।

उधार का बेटा

सुबह से लगातार बारिश हो रही है। समस्त आकाश मनचले काले मेघों से आच्छादित है। तेज़ पुरवा हवाएं शरीर भेद रही हैं। बीच-बीच में बिजली की चमक और तड़क से वातावरण भयावह लग रहा है। पीपल का विशाल वृक्ष हवा के झकोरों से उद्वेलित हो रहा है। उसकी डालियां और पत्ते हवा के थपेड़ों से सनसनाहट की ध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं।

सुखिया इसी वृक्ष के नीचे अपने झोंपड़े में, खटिया पर दुबकी पड़ी है। झोंपड़े की किन्हीं-किन्हीं सुराखों में से वर्षा का जल भीतर भी प्रवेश कर रहा है। एक कोने में जलती हुई ढेबरी की लौ से झोंपड़ी में पर्याप्त उजाला है। सुखिया सोच रही है---आज उसके चूरन की बिक्री नहीं हुई। बारिश के कारण स्कूल की छुट्टी हो गयी। अकस्मात् झोंपड़ी में लगे टीन के दरवाजे पर किसी की दस्तक से चौंक पड़ी। वह भय के कारण सिकुड़ कर लेटी रही। दरवाज़े पर बराबर दस्तक होती रही। एक पुरुष स्वर चीख उठा, "दरवाज़ा जल्दी खोल दे अम्मा ! मैं कोई चोर-उचक्का नहीं। मैं रिक्शा चलाता हूं। बस ज़रा देर रुकूंगा।" सुखिया कुरमुरायी। उसका वात्सल्य छलक उठा। उसने उठकर दरवाज़ा खोल दिया। सामने एक नवयुवक को खड़ा पाया। उसे लगा, उसका बेटा हरखू वापस आ गया है। सुखिया के नेत्र छलछला आये। "आ जा बेटा, भीतर आ जा। तू कब से खड़ा बाहर भींग रहा है। यह ले अपना सर पोंछ डाल।" सुखिया ने एक फटी साड़ी युवक की तरफ बढ़ायी। युबक आश्चर्यचकित

था। सुखिया ने कहा "तू बैठ बेटे ! मैं तेरे लिए रोटी बनाती हूं।"

"नहीं अम्मा, तू बैठ, आज खाना मैं बनाता हूं।" युवक ने चूल्हा जलाया। रोटी बनायी। सुखिया टकटकी बांधे युवक को देखती रही। दोनों ने रोटी खायी, और विश्राम करने लगे।

सुबह सूरज की ढेर-सी किरनें, झोंपड़ी के छिद्रों से भीतर प्रवेश कर रही थीं। सुखिया उठी; उसने अपनी चादर युवक को ओढ़ा दी। वह चूरन की टोकरी लेकर पीपल के वृक्ष के चबूतरे पर बैठ गयी। उसने भगवान से प्रार्थना की—"चूरन की आज अच्छी बिक्री हो। मेरा बेटा आज वापस आया है। उसको अच्छा खाना खिलाऊंगी।"

युवक सोकर उठ गया। उसने देखा, बुढ़िया वहां नहीं है, वह बाहर आया। उसने देखा बुढ़िया के चूरन की टोकरी के पास बच्चों की भीड़ लगी है। युवक बोला, "अम्मा, हम जा रहे हैं।"

सुखिया हड़बड़ाकर उठी, "कहां जा रहा है बेटा ? तू अपनी मां को छोड़कर जा रहा है ?"

युवक कुछ पल मौन रहा। उसने सोचा, चलो सर छुपाने की एक जगह मिल गयी। अम्मा के हाथ की बनी रोटियां भी खाने को मिलेंगी। फिर बोला, "मैं तुझे छोड़कर नहीं जा रहा हूं अम्मा ! इस दुनिया में मेरा कोई नहीं। मैं रिक्शा लेकर जाता हूं। दोपहर तक आऊंगा।"

"अच्छा बेटा, जा। मैं तेरे लिए खाना बनाकर रखूंगी।" युवक चला गया।

आज सुखिया को चूरन की बिक्री से अच्छे पैसे मिले। वह दीनू साहू की दुकान पर गयी। उसने दाल, आलू, आटा खरीदा। साहू बोला, "अम्मा, आज तू इतना सारा सामान ले जा रही है। कोई मेहमान आया है क्या ?"

"हां, कल रात मेरा बेटा वापस आ गया।" साहू सुखिया की बात सुनकर हंस पड़ा। "बावली हो गयी। इसका बेटा तो पिछले साल के दंगे में मार दिया गया था।"

बेचारी सुखिया ने दाल, रोटी, आलू की तरकारी बनायी। खाना बनाकर ढक दिया। वह हरखू की प्रतीक्षा करने लगी। दोपहरिया गहरा

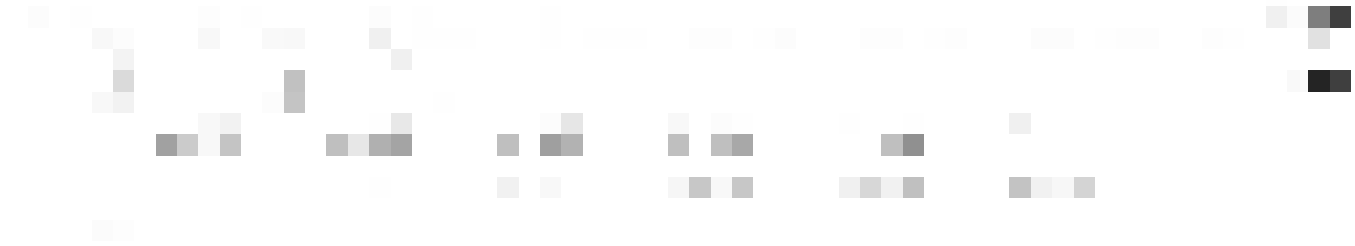

गयी। बरसात की तेज़ धूप में आंखें चटख रही थीं। तभी दरवाजा खड़का। सुखिया का हृदय उछल पड़ा। "आ गया बेटा हरखू ? जा, हाथ-मुंह धो ले, खाना तैयार है।"

युवक बोला; "अम्मा मेरा नाम तो सिकन्दर है।"

"नहीं बेटा, तू मेरा हरखू ही है।"

"अच्छा जैसी तेरी मर्ज़ी।" युवक अपने साथ कुछ राशन लाया था। अम्मा को थमाता हुआ बोला, "अब मैं राशन पानी का बन्दोबस्त कर लूंगा। तू चिन्ता न कर।" सुखिया गद्‌गद हो उठी।

समय के पंख उड़ान भरते रहे। सुखिया को नया जीवन ही मिल गया। एक दिन युवक बोला, "अम्मा, हमने अपना ब्याह कर लिया है। यह ले साड़ी तेरे लिए। कल मैं तेरी बहू घर ले आऊंगा।"

सुखिया का मन चटख गया, "तूने ब्याह कर लिया बेटे, मुझसे बिना बताये ? मैं तेरा ब्याह धूमधाम से करती।"

"उसकी कोई जरूरत नहीं अम्मा। शम्मो भी हमारी तरह अनाथ है।"

"तू कहां अनाथ है, मैं हूं न तेरी मां।

"हां, मुझसे भूल हो गयी अम्मा।"

आज सुखिया सुबह से ही बहू की अगवानी में लग गयी। लिपाई-पुताई कर, झोंपड़ी को साफ किया। गुड़ के चावल पकाये। गोधूलि का समय हो गया। बेटे के रिक्शे की घंटी की ध्वनि सुन सुखिया गद्‌गद हो उठी। कुछ पल बाद ही युवक शम्मो के साथ भीतर आया। सुखिया ने बहू को गले से लगाकर आशीर्वाद दिया। अब सुखिया निश्चिन्त होकर चूरन बेचती। घर आने पर उसे बना-बनाया खाना मिलता। सुखिया बहुत खुश थी। एक दिन सुखिया ने बेटे से कहा, "बेटा, कुछ दिनों के लिए मैं अपनी बहन के घर मथुरा जाना चाहती हूं।"

युवक ने कहा, "ठीक है।" वह अम्मा को रेल गाड़ी के डिब्बे में बैठा आया।

सिकन्दर और शम्मो मनमाने ढंग से झोंपड़ी में रहते। मांस पकता। सिकन्दर अधिकतर घर आते समय बगल में ठर्रे की बोतल दबाये आता।

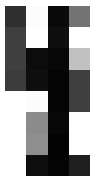

शराब पीकर धुत हो जाता तो एक तरफ़ लुढ़क जाता। शम्मो घर का सारा काम करती। बर्तन, पानी, सफाई खाना, कपड़ा। शाम को सिकन्दर किसी बात को लेकर शम्मो से लड़ जाता। अम्मा को गये छः माह हो गये। शम्मो रोज़ बाट जोहती। धीरे-धीरे वर्ष व्यतीत हो गया। शम्मो ने जुड़वा बेटियों को जन्म दिया। शम्मो कहती, "जाकर अम्मा को ले आओ।"

युवक कहता आ जायेगी अपने आप।"

सुखिया यह सोचकर खुश थी कि उसका बेटा अपनी गृहस्थी में सुख से रह रहा है। अकस्मात् सुखिया को बेटे-बहू को देखने की इच्छा जागृत हो उठी। उसने वापसी की तैयारी कर डाली। बहू के लिए लाल इंगुर और मथुरा के पेड़े खरीदे।

सुखिया सोचती रही अब तक तो बहू की गोद भी हरी हो गयी होगी। सुखिया पोटली संभाले अपनी झोंपड़ी के दरवाज़े पर पहुंच गयी। उसने बाहर से सुना, बहू-बेटा किसी बात को लेकर आपस में झगड़ रहे हैं। दरवाज़ा खुला, वह अन्दर आ गयी। युवक बोला, "आ गयी अम्मा, हम तुम्हारा इन्तजार कर रहे थे।"

सुखिया ने पोटली शम्मो को थमा दी। "तुम कैसी रहीं अम्मा।"

"अच्छी थी। लेकिन तुम लोग खुश नहीं थे।"

शम्मो ने सोती हुई बेटियों को उठाकर अम्मा की गोद में डाल दिया। सुखिया का रोम-रोम सुखाच्छादित हो उठा। वह विभोर हो उठी। उसने बच्चों को कलेजे से चिपका लिया।

सुखिया घरेलू काम में बहू का पूरा साथ देती। बच्चियों को संभालती। चूरन बेचने भी जाती। युवक मना करता। सुखिया कहती "अपना काम करके सुख मिलता है बेटा।" युवक की बदली आदतों से सुखिया धीरे-धीरे परिचित हो गयी। युवक घर में जब तक रहता, खीझता रहता। शाम ठर्रे की बोतल लाना नहीं भूलता। शम्मो को मारता। अम्मा दुःखी होती। बेटे को समझाती। वह नहीं मानता। युवक नशे में उसे भी गालियां देता। सुखिया को अपनी झोंपड़ी में अशान्ति पाकर बहुत दुःख होता।

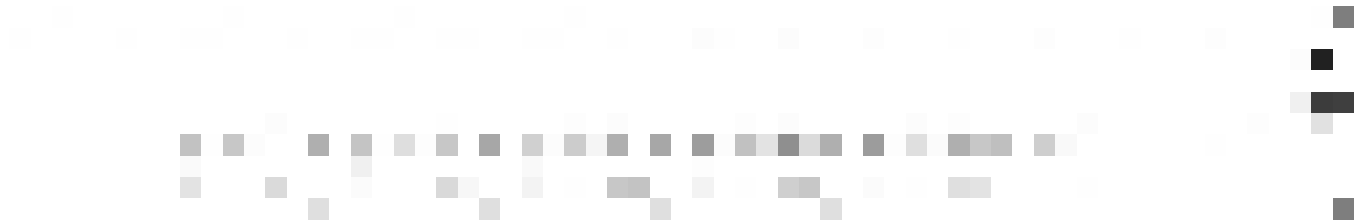

सुखिया बीमार पड़ गयी। बीच में ठीक भी हो गयी। एक दिन युवक अधिक नशे के कारण सुखिया को भी मारने दौड़ा। सुखिया सन्न रह गयी। दूसरे ही दिन सुखिया बीमार पड़ गयी। ज्वर हड्डियों के भीतर तक समा गया। उसने खटिया पकड़ ली। एक शाम सुखिया ने जीवन की अन्तिम श्वासों का कोष खर्च डाला। बाहर बरसात शुरू हो गयी थी। शम्मो दोनों बच्चों को सीने से चिपकाये अम्मा की लाश के पास बैठी थी।

सांझ तक बरसात थम चुकी थी। युवक रिक्शा लेकर आ गया। शम्मो, सिकन्दर को देखकर बिलख पड़ी।

सिकन्दर बोला, "मर गयी बुढ़िया, मैं तो पहले से ही जानता था ?" सिकन्दर ने सुखिया के शव को बांध कर रिक्शे पर लादा। उसके पांव रिक्शे के पैडल पर तेजी से भाग रहे थे और मन सोच रहा था। इन पांच सौ रुपयों से एक कमरा तो बनवा ही लूंगा। उसके पैरों में अपार शक्ति भर आयी। उसने तेज़ी से रिक्शा मेडिकल कॉलेज की तरफ़ मोड़ लिया।

सिकन्दर ने शम्मो को जोर से डांटते हुए कहा, "चुप हो जा। मैं तो पहले ही जानता था। अब बुढ़िया ज्यादा दिन तक नहीं चलने वाली। इसी कारण पहले ही मेडिकल कॉलेज से बात कर रखी है।"

सिकन्दर ने बुढ़िया के शव को रिक्शे पर रस्सियों से बांधकर रख लिया। उसके पांव तेज़ी से पायडल पर भाग रहे थे, उसका मस्तिष्क जोड़-तोड़ करने में लग रहा था।

पांच सौ में यह झोंपड़ी, एक कमरे में बदल जायेगी।

'छत' पाने की कल्पना। वह और तीव्रता से रिक्शा चलाता मेडिकल कॉलेज के मुखद्वार तक पहुंच गया।

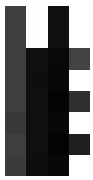

शिवा

रात थककर सुबह की बांहों में विश्राम करने चली गई। तारे सूरज की रोशनी के आगोश में समा गये। सुबह का झुटपुटा झांक रहा था। मुर्गे बांग देने लगे थे। गिरधारी लाल सोकर उठ चुके थे। उन्होंने सिरहाने रखी छड़ी संभाली और बैठक के बाहर निकल गये। डॉक्टर ने उन्हें टहलने की सलाह दी है। वह अपने होटल में 10 बजे सुबह से रात तक बैठे रहते हैं। उनका ब्लड कलस्ट्राल बढ़ा हुआ है। इसीलिए वह रोज़ सुबह टहलने जाते हैं।

रोज़ की तरह गिरधारी लाल जी आज भी टहल कर लौट रहे थे। उनकी निगाह होटल के पास पड़े कूड़े के ढेर पर पड़ी, जहां एक काला, बेहद दुबला, लगभग 10 वर्ष का बालक कूड़े में से कुछ बीन रहा था। गिरधारी उसके समीप आए। लड़के के बदन पर कपड़े के नाम पर एक फटी नेकर ही थी। वह फुर्ती से खाने का टुकड़ा उठाकर मुंह में डालता। अचानक उसकी दृष्टि गिरधारी लाल से मिली। उन्होंने इशारे से बुलाया। लड़का सकपका गया। उसकी मासूम आंखों से भय झांक रहा था। गिरधारी ने कहा, "डरो नहीं! हम तुम्हें मारेंगे नहीं।" लड़का अपनी ढीली नेकर ऊपर सरकाता, दाहिने बाजू से नाक रगड़ता, भयाक्रान्त आगे बढ़ा। "तुम यहां क्या कर रहे थे?" गिरधारी ने पुचकारते हुए कहा।

"जी खाना बीन रहा था।"

गिरधारी ने देखा, बालक के आंख के नीचे काले गट्ठे, गर्दन की

हड्डियां उभरी हुई। लकड़ियों-से सूखे हाथ-पांव। "कहां रहते हो? तुम्हारे पिता क्या करते हैं?"

"जी, स्टेशन पर सोते हैं हम। मैं भीख मांगता हूं।" अब तक लड़के का भय जा चुका था। "भीख का तो ऐसे है न साहब, कभी कोई दिलेर साहब 5 रुपये तक दे जाता है। कभी पेट भरने के लाले पड़ जाते हैं।"

"तुम्हें भीख मांगना अच्छा लगता है?"

"भीख न मांगूं तो बूढ़ा मारता है। कहता है—क्या इसीलिए तुझे कचरे के ढेर से उठा लाया था। पाल-पोस कर इतना बड़ा किया। हरामी कहीं का, न जाने किसके पाप की गठरी है तू। मैंने तुझे अपने बुढ़ापे के दिनों के लिए ही तो पाला है।" लड़के की आंखों में दर्द पसीज उठा, गरम जल की दो-चार बूंदें ज़मीन पर गिर पड़ीं।

गिरधारी का मन उस बच्चे की दुखद कथा सुनकर दुःख से भर उठा। वह बोला, "बेटे, रोते नहीं, तुम्हारा नाम क्या है?"

"जी, शीबू!"

"मेरे साथ चलोगे?"

"जी पर वह बूढ़ा? वह मुझे पीटेगा।"

"नहीं, तुम्हें कोई नहीं पीटेगा।" शीबू के कदम गिरधारी लाल के पीछे-पीछे चल पड़े।

घर पहुंचकर गिरधारी लाल ने अपनी पत्नी से कहा, "देखो, यह छोकरा हम अपनी होटल के लिए लाये हैं। इसे मुन्नू की पुरानी कमीज-नेकर दे दो।"

सेठानी ने शीबू का मुआयना ऊपर से नीचे तक किया। उसे साबुन की बट्टी और कपड़े देकर बोली, "जा, खूब सफाई से नहाकर कपड़े पहन ले।" शीबू को नहाकर साफ कपड़े पहनकर बहुत अच्छा लगा। उसने आज भरपेट खाना खाया—रोटी, दाल और भांजी।

दस बजने को थे, गिरधारी भी तैयार होकर दुकान चला। रास्ते-भर शीबू को समझाता रहा, "देख, मन लगाकर काम करना। दस रुपये और खाना-नाश्ता मिलेगा। दुकान के बाहर मत जाना। मेरे साथ ही घर वापस चलना, जब मैं चलूंगा।"

"ठीक है साहब !"

होटल आ गया था। वहां और भी लड़के थे। कुल मिलाकर छह पर सभी शीबू से उम्र में बड़े थे। गिरधारी ने सभी से शीबू का परिचय करवाया। सबने मुसकराकर उसका स्वागत किया। उनमें से सबसे बड़ा मन्नू बोला, "आ जा, लग जा काम पर। तू चाय की मेज पोछेगा, ये ले कपड़ा और मार दे सारी मेजों पर।"

जल्दी ही शीबू ने काम सीख लिया। वह मेजों की सफ़ाई और जूठे बर्तन उठाने का काम बड़ी फुर्ती और तत्परता से करता। रात में बर्तनों की सफाई में और लड़कों की मदद भी करता। रात के 11 बजे तक जाग कर, बीच में जाने कितनी बार मुंह खोल-खोलकर जमुहाई ले लिया करता था, 12 बजे करीब वह गिरधारी के साथ उसके घर जाता।

सुबह से ही गिरधारी सैर को चले जाते और सेठानी कहती, "शीबू-शीबू, उठ। देख, रसोई में जूठे बर्तन पड़े हैं, उन्हें साफ कर डाल जल्दी से। नाश्ता बनाना है। मुन्नू-चुन्नू और गुड़िया सब उठने वाले हैं। उन्हें स्कूल जाना है। देरी हो जायेगी।"

शीबू अपनी मालकिन की एक आवाज़ पर कुनमुनाता हुआ आंखें मलता रसोई में घुस जाता। वहां पहुंचकर जूठे बर्तन उसकी नींद उड़ा ले जाते। वह झूल-झूलकर उन्हें साफ करने लगता। मालकिन की आवाज़ आती, "अरे, जल्दी कर, एक भगोना साफ करके पहले चाय का पानी रख दे।"

"जी अच्छा !" कभी-कभी उसका बालपन उससे भी स्कूल जाने की हठ करता। पर सब कुछ कितना कठिन है, वह वापस अपनी दुनिया में लौट आता। कभी-कभी शीबू काम से इतना थक जाता। सुबह 6 बजे से रात 12 बजे तक वह निरन्तर कार्य करता। कभी-कभी घबराकर सोचता, यार, पहले ही दुरुस्त थे। भीख ही तो मांगते थे पर जमकर सोते तो थे। रात सपनों में वह भी स्कूल ड्रेस पहने, बैग लटकाए स्कूल गया। कितना अच्छा लगा उसे। मास्टर साहब कितना अच्छा पढ़ा रहे थे !

"मैं भी पढ़ूंगा।" और सुबह शीबू मुन्नू के पास गया।

"बड़े भइया, हम भी पढ़ेंगे तुम मुझे पढ़ा दोगे ?"

"चल-चल, मां ने तुझे पढ़ाने के लिए थोड़े ही रखा है। तुझे तो घर

और होटल का काम ही करना है"—और एक अनबूझी वेदना लिये शीबू वापस रसोई में बर्तनों की सफाई में जुट गया।

दूसरे दिन सपनों की दुनिया का सफर फिर शुरू हो गया। उसी प्रकार तैयार होकर स्कूल के लिए रवाना हो गया। आज सपने में वही बूढ़ा दिखाई पड़ा, "पकड़ो, पकड़ो, भागने न पाये। रुक जा शीबू!" और खरगोश की चाल से वह घर तक आ गया था। "नहीं, नहीं, वह अब स्कूल नहीं जायेगा।" उसके उनींदी आंखों की नमी उसके गालों तक तैर आयी।

वह सुबह फिर अपने कार्य में लग गया।

होटल में एक सलोना-सा युवक रोज़ ही आता है। और शीबू को एक प्यार-भरी नज़र से देखता। शीबू को उसके आने की प्रतीक्षा रहती, जिस दिन वह नहीं आता, जाने क्यों वह उदास हो जाता।

आज कुछ दिनों के बाद वही युवक आया है। उसे देखकर शीबू की आंखों में धूप-सी चमक आ गयी है। शीबू ने उसे सलाम किया, "आज बहुत दिनों के बाद आए साब!"

"हां, शीबू! मैं अपने गांव चला गया था। वहां एक स्कूल में मैं पढ़ाता हूं। यहां अक्सर शहर में मैं रिसर्च के काम से आता हूं।"

"रिसर्च क्या, साहब?"

"तू नहीं समझेगा शीबू। और हां, तुम्हें पढ़ने का मन करता है शीबू?"

शीबू के रोम-रोम में कम्पन व्याप गया। इन साहब को मेरे मन की बात कैसे पता चल गई। वह निश्छल मुसकान लिये बोला, "हां साहब, मैं पढ़ना चाहता हूं। पर साहब, मैं पढ़ने चला जाऊंगा तो खाऊंगा क्या? नहीं साहब, मैं यहीं ठीक हूं।"

"अरे पगले, पढ़ाई करने के लिए कहीं नहीं जाना होगा। मैं यहीं पढ़ाऊंगा। कापी-किताब-पेन्सिल लाकर दूंगा। तुम काम से समय निकाल और छुट्टियों के दिन पढ़ सकते हो। हां भई, पढ़ना है तो मेहनत तो करनी ही पड़ेगी। मैं गिरधारी से कह दूंगा, वह भला आदमी है।"

"हां साहब, वह बड़े दयालु हैं। उन्हीं की दया से मैं यहां नौकरी पर हूं।"

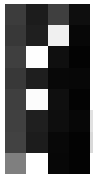

"अब जाओ, एक कप गरम-गरम चाय ले आओ।"

"अभी लाया साहब।" शीबू झट से चाय का प्याला लेकर पहुंच गया।

युवक बोला, "और साहब-वाहब कुछ नहीं, सिर्फ भइया। ठीक है न ?"

"ठीक है, भइया।"

"शाबाश !" शीबू ने पढ़ना शुरू कर दिया है। शीबू की बुद्धि तीव्र थी। अक्सर रोज ही युवक आता, चाय पीता और शीबू को पढ़ाता।

युवक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इतना आकर्षक लगता। खादी के वस्त्र— कुर्ता, पायजामा, जवाहर बंडी और काली चप्पलों में वह निखर उठता। वह भी तो बिना मां-बाप का बच्चा है। उसका फर्ज है अपनी ही तरह के दूसरे बच्चों की मदद करना।

समय पांखी बन उड़ता गया। शीबू ने अपनी कुशाग्र बुद्धि और लगन से हाईस्कूल की परीक्षा पास कर ली। अब वह समझदार हो गया है। अपनी युवा भुजाओं से अधिक कार्य का बोझ उठा सकता है। इधर गिरधारी ने शीबू को अपने होटल का मैनेजर बना दिया है। वह ग्राहकों से बिल लेता है। शीबू की सफलता से सेठानी भी बड़ी उदार हो गयी हैं। उसकी हर सुख-सुविधा का ध्यान रखती हैं। वह अब इस परिवार में एक सदस्य की तरह रहता है। घर के सभी छोटे-मोटे कार्य शीबू करता है। गुड़िया की पढ़ाई की जिम्मेदारी भी शीबू को ही सेठानी ने सौंप दी है।

गुड़िया भी शीबू का खूब ध्यान रखती है। समय के अन्तराल ने करवट ली है। शीबू ने इण्टरमीडिएट की परीक्षा दी है। साथ ही मेडिकल की परीक्षा की भी तैयारी कर रहा है। शीबू कड़ी मेहनत कर रहा है। उसकी परीक्षाएं अच्छी हुई हैं। लगभग दो माह बाद परीक्षाफल निकला। ईश्वर ने उसके परिश्रम का प्रतिफल उसे दे दिया। उसका चयन लखनऊ मेडिकल कॉलेज में हो गया है। आज शीबू बहुत खुश है। शीबू इन सबका श्रेय एक मात्र अपने भइया और सेठजी के परिवार को देता है। इधर कितने वर्षों से वह आकाश भइया से नहीं मिला। भइया का ध्यान आते ही शीबू का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। कहां होंगे भइया। इतनी चिट्ठियां

डाली। वह स्वयं भी उसके गांव गया। कुछ पता नहीं चल पाया। शीबू सोच रहा था—भइया उसके डॉक्टरी की परीक्षा में आने से कितने गदगद होंगे। सेठ के दोनों लड़कों का ब्याह हो गया। वह अपनी नौकरी पर सपरिवार चले गये। सेठानी ने शीबू को आर्थिक रूप से बहुत सहायता की। मेडिकल में दाखिले का सारा खर्च उन्होंने ही उठाया। शीबू लखनऊ चला गया। वह बराबर पत्र से सेठजी का हाल लेता रहता। छुट्टियों में आता रहता। अबकी छुट्टियों में शीबू घर आया, सेठजी बहुत बीमार रहे। उन्होंने कहा—"शीबू बेटे गुड़िया और सेठानी का खयाल रखना। मैं बहुत थक चुका हूं।"

"आप कैसी बातें कर रहे हैं सेठजी, आप जल्दी अच्छे हो जायेंगे। मेरा तो यही घर है सेठजी, और इस घर की रक्षा करना मेरा फ़र्ज़ है। आप निश्चिन्त रहें। मैं जल्दी ही आऊंगा, अपना खयाल रखिएगा।" शीबू की छुट्टियां खत्म हो गईं। वह चला गया।

लखनऊ आकर उसका मन पढ़ाई में नहीं लगा। बार-बार सेठजी का चेहरा सामने आता। उसने आकर भइया को पत्र लिखा। भइया का स्मरण कर हिम्मत जुटाई और पढ़ाई में जुट गया।

आज उसे गुड़िया का तार मिला—सेठजी का स्वर्गवास हो गया। उसे लगा उसके सिर की घनी छांव धूप की तपन में बदल गई। वह शाम की गाड़ी से सीतापुर चल पड़ा। वहां दोनों भइया सपरिवार पहुंच गये थे। सेठानी शीबू को देख विह्वल हो उठी। शीबू ने उन्हें बहुत सहारा दिया। शीबू एक हफ्ता रहकर वापस लखनऊ चला गया। उसकी फाइनल परीक्षा शुरू होने वाली है। उसे गुड़िया और सेठानी का बराबर ध्यान रहता। वह यही सोचता, फाइनल करने के बाद वह आकाश भइया के गांव में क्लीनिक खोलेगा। वह पूरी मेहनत से पढ़ाई में जुट गया। परीक्षाएं हो गईं। परीक्षा देकर शीबू भइया के गांव गया। वहां उनका पता किया। गांव वालों ने बताया कि आकाश का देहान्त तो तीन वर्ष पूर्व ही हो गया। शीबू को लगा एक बार वह फिर से अनाथ हो गया। उसके सिर पर से बूढ़े पीपल की छाया तो पहले ही उठ चुकी थी, अब वह स्वयं को नितान्त अकेला महसूस कर रहा था। आकाश भइया का घर, जो सिर्फ एक अत्यन्त

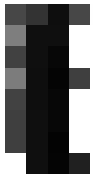

जर्जरावस्था की कोठरी था। उसके आसपास की ज़मीन खरीदने की बातचीत कर ली। वह बाहर आ गया। शीबू ने भइया के सपनों को साकार करने की योजना बना ली। उसका परीक्षाफल निकल चुका था। वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। उसका सुख, सेठजी और आकाश भइया की मृत्यु-शोक में डूब गया।

उसने एक पत्र सेठानी को लिखा। अपने पास होने की खबर और 'आकाश क्लीनिक' के उद्घाटन पर उन्हें गांव बुलाने को। उद्घाटन सेठानी जी को ही करना था।

पत्र पाकर गुड़िया ने मां को पढ़कर सुनाया। प्रसन्नता का सुख सेठानी के नयनों से टपकते जल ने प्रकट कर दिया। गुड़िया भी आज बहुत प्रसन्न थी। वह मां के साथ गांव जाने की तैयारी में लग गई।

क्लीनिक का उद्घाटन हो गया। गांव के सभी लोग आए। शहर से शीबू के मित्र डॉक्टर लोग भी आए। सेठानी ने भाव-विह्वल होकर कहा—"डॉक्टर शीबू हमारे गांव के लिए ही नहीं, पूरे भारतवर्ष के लिए एक मिसाल हैं। उनकी मेहनत और लगन ही उन्हें सफलता के इस मुकाम तक लायी है।" गुड़िया की प्रसन्नता उसके कपोलों के गुलाबीपन में झांक रही थी। गुड़िया की स्वप्निल आंखें बार-बार शीबू को निहार लेतीं।

शीबू ने आकाश भइया को श्रद्धांजलि अर्पित की। "भइया हमारी प्रेरणा थे। आज मैं जहां हूं, उन्हीं की बदौलत हूं।"

उद्घाटन समारोह समाप्त हो गया था। रात देर तक सेठानी शीबू से बातें करती रहीं। दोनों बेटों का व्यवहार। सेठजी की मृत्यु। घर और होटल का हाल। गुड़िया के विवाह की समस्या। शीबू सुनता रहा। वह बोला—"हां, अब तो गुड़िया ने बी० ए० कर लिया। गुड़िया का आगे क्या इरादा है ? वह आगे एम० ए० करना चाहेगी ?"

सेठानी बोलीं—"नहीं शीबू, अब जो भी करना होगा, शादी के बाद ही करवा देना।"

"शादी के बाद तो गुड़िया ससुराल वालों की इच्छानुसार ही पढ़ाई आगे बढ़ा पाएगी।"

"इसीलिए तो गुड़िया की आगे की पढ़ाई का काम तुम्हें सौंपकर मैं

निश्चिन्त होना चाहती हूं, शीबू !"

"मैं समझा नहीं···"

"हां, शीबू, मैंने यह निश्चय किया है ! गुड़िया को तुम्हें सौंप दूं।"

"आप क्या कह रही हैं। ऐसा कैसे हो सकता है। मैं कौन हूं ? क्या हूं। यह सब जानते हुए···"

"नहीं शीबू, तुम इस समय जो हो वही तुम्हारा असली अस्तित्व है। तुम क्या थे, इसका अब कोई महत्त्व नहीं।"

"तुम्हें गुड़िया पसन्द नहीं तो···यह और बात है।"

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं, मुझे तो आपने इस योग्य समझा।···इसके लिए मैं आपका आभारी हूं। एक बार गुड़िया से भी तो पूछ लीजिए।"

गुड़िया सब कुछ बगल के कमरे से सुन रही थी। शीबू और सेठानी को कमरे में आने की आहट गुड़िया को मिल गई। उसके नेत्र शीबू के नेत्रों से स्पर्शित हुए। उसने झट से अपना मुंह हथेलियों से छुपा लिया।

सेठानी मुसकराते हुए बोली—"शीबू, कल सुबह हमें शहर जाना होगा। गुड़िया के विवाह की तैयारी भी तो करनी है।"

पीले पत्तों का दर्द

सामने के बूढ़े पीपल के पत्ते ढलते हुए सूरज की लाल रोशनी में, तांबई रंग के दिखाई पड़ रहे हैं। सूरज नीचे उतरकर लगभग अस्त हो रहा है। बाहरी सहन में हरी बाबू की टिकठी सजाई जा रही है। बहुत से लोग बाहरी बरामदे में भीड़ लगाये खड़े हैं। बीच में हरी बाबू की लाश बर्फ की सिल्ली पर रखी है।

आज सुबह ही उन्होंने अन्तिम सांसों का कोष खर्च डाला।

पूरे घर में शोक छाया हुआ है। हरी बाबू की पत्नी सीता देवी कई बार मूर्च्छित हो गई हैं। मोहल्ले की औरतें उनके पास बैठी सांत्वना दे रही हैं।

हरी बाबू एकाउण्ट्स ऑफिस में प्रधान लिपिक थे। उनकी तीन सन्तानें थीं—दो पुत्र, एक पुत्री। सभी का विवाह हो चुका था। हरि बाबू जिम्मेदारियों से मुक्त हो चुके थे।

पिछले महीने से ही हरि बाबू का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। खाना छूटता जा रहा था। कभी जवानी में उनका बदन इतना तगड़ा था। चलते थे तो जमीन दहलती थी।

"इतने हिम्मती थे भइया कि पूछो मत। हम लोग उन्हें 'किंग कांग' कहा करते थे। एक बार छोटू छत पर खेल रहा था। एक बन्दर उस पर झपट पड़ा। हरि भइया ने आव देखा न ताव, टूट पड़े उस पर और गर्दन पकड़कर छत के पिछवाड़े फेंक दिया।" छोटे चाचा कहते-कहते रुआंसे हो

गये ।

अर्थी तैयार हो गई थी । हरि बाबू की शव-यात्रा में छोटे-बड़े सभी धर्मों के लोग थे। लोग उन्हें आदर, सम्मान देते थे। वह रहमदिल मानवतावादी विचारों के व्यक्ति थे। उन्होंने जीवन-काल में सन्तोष को ही अपनी थाती माना। उनका अपना मकान था ।

वह अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थे। उनका बचपन लाड़-प्यार में बीता । पढ़ाई के लिए लखनऊ भेजा गया । छोटी ही उम्र में उनका विवाह हो गया। उनकी तीन सन्तानें हुईं । बड़ा बेटा नरेन्द्र दिल्ली में अफसर है। सुरेन्द्र छोटा पढ़ाई में कम सैर-सपाटे में ज्यादा तबीयत लगाता है। एम० ए० की परीक्षा दे रहे हैं। सबसे छोटी गंगा इण्टर की परीक्षा पास कर चुकी है। सुशील घरेलू लड़की है।

नरेन्द्र का विवाह इसी वर्ष हुआ है। उसकी नौकरी दिल्ली ही लग गई है। वह अपनी पत्नी को लेकर दिल्ली रह रहा है। इसी बीच हरि बाबू अकस्मात् बीमार पड़ गये। उनके बाएं अलंग में लकवा का प्रकोप हो गया। हरिबाबू की नौकरी छूट गयी। सारे परिवार पर दुःख की छाया गहरा गई। अभी सुरेन्द्र और गंगा की पूरी जिम्मेदारी हरिबाबू पर है। हरिबाबू पहाड़-सा जीवन सामने देख रहे थे। पर उनके पैर निःस्पन्द थे। वह भीतर-ही-भीतर रोज टूटते जा रहे थे। पिता की बीमारी सुनकर नरेन्द्र, पत्नी, बच्चे सब आये। एक हफ्ता रहकर चले गये। बच्चों का स्कूल, रीमा की नौकरी और खुद नरेन्द्र ऑफिस से ज्यादा छुट्टियां नहीं ले सकता। फिर भी जब तक नरेन्द्र का परिवार रहा हरिबाबू को लगा, वह अकेले नहीं हैं। घर का बड़ा बेटा सारी जिम्मेदारी संभाल लेगा।

सुरेन्द्र में पनपता बदलाव देख बाबू जी हैरान थे। घण्टों गुम-सुम बैठा रहता। रात-रात भर बाबू जी के सिरहाने बैठकर काट देता। बहुत कहने पर कहता, "मैं ठीक हूं अम्मा।" सुरेन्द्र एम० ए० की परीक्षा में पास हो गया। उसे नौकरी की तलाश है। अच्छी नौकरी के लिए कम्पटीशन में बैठना होगा। पूरी मेहनत से तैयारी करनी होगी। लेकिन फिलहाल तो उसे कुछ करना ही होगा।

आज शाम अम्मा ने ही कहा, "बेटे, पिता जी की ही नौकरी कर

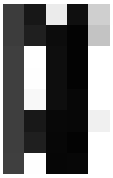

ले। इसमें बुरा क्या है !"

वह मां से कैसे कहे, 'मां, मैं क्लर्क नहीं बनना चाहता।' वह चुपचाप वहां से हट गया।

सच कब तक सींकचों में बन्द रहता। हारकर सुरेन्द्र को बाबू जी की जगह पर क्लर्क की नौकरी करनी ही पड़ी। सुरेन्द्र बाबू जी के चेहरे पर प्रश्नों का अलाव जलता देखता। कहता, "बाबू जी, आप चिन्ता क्यों करते हैं, मैं हूं न ?"

बाबू जी की आंखों के किनारे भीग जाते। वह धीरे से मुसकरा देते। वह सुरेन्द्र की संजीदगी, उसके एक बैग इतनी जिम्मेदारी ओढ़ लेने से दुःखी भी थे और सुखी भी।

सुरेन्द्र बस की क्यू में खड़ा था, उसके आगे एक दुबली-पतली, गेहुंए रंग, नीली आंखों वाली मृगनयनी युवती खड़ी थी। दोनों साथ ही बस में चढ़ते। लगभग एक ही सीट पर बैठते। मुलाकातों के दौरान बातचीत का सिलसिला भी चल पड़ा, "कहां रहती हैं आप? किस फर्म में काम करती हैं ? घर में कौन-कौन हैं ?"

प्रति-उत्तर में भी यही सवाल उठे। रोज मिलना दोस्ती में बदला, दोस्ती गहराती गई। एक दिन शशि ने मन की परत-दर-परत सुरेन्द्र के सामने उकेर दी।

सुरेन्द्र भी सुनता गया, कहता गया।

कहने सुनने की बात दोनों परिवारों तक पहुंची। अम्मा ने सुना, पर कहा कुछ नहीं। बाबू जी ने स्वीकृति दे दी। शशि के पिता बचपन में उसे छोड़कर चले गये। तीन भाइयों की इकलौती बहन है। उसके भाइयों ने हां भी भर दी। इससे अच्छा और क्या हो सकता है। पढ़ी-लिखी लड़कियां अपने-आप अपना विवाह भी तय कर लें।

शशि के कानों में भनक पड़ी। भाभी कह रही थी, "ठीक ही तो है, दान-दहेज का बखेड़ा नहीं रहेगा।"

भइया बोले, "फिर भी हमें अपनी तरफ से तो सभी कुछ देना होगा ···मेरी एक ही तो बहन है।"

और भाभी ने भइया को झिटक दिया था, "'अपनी पिंकी भी तो

बड़ी हो रही है।"

शशि वापस अपने कमरे में आ गयी थी। उसने निर्णय किया। वह भइया से कह देगी—घर से एक भी सामान नहीं लेगी। अपना फैसला उसने सुरेन्द्र को सुनाया।

सुरेन्द्र बोला, "शशि, तुम जानती हो, मैंने किन परिस्थितियों में बाबू जी की पुरानी नौकरी स्वीकारी है। मैंने अपने कैरियर को वहीं विराम नहीं दिया है। मैं कम्पटीशन में बैठ रहा हूं। तुम्हारा प्यार और स्नेह मुझे जरूर सफलता देगा। शशि, मैं तुमसे विवाह कर रहा हूं। तुम्हारे भाइयों के दिये सामानों से नहीं। हम दोनों अपना घर खुद बनाएंगे।"

शशि ने अपनी निगाहें झुका ली, "मैं जानती हूं सुरेन्द्र, इसीलिए मुझे लगा, तुम मेरे जीवन में एक अच्छे साथी बन सकोगे।"

सुरेन्द्र और शशि का विवाह हो गया। अम्मा की देखभाल, बाबू जी की सेवा। दिन भर ऑफिस और गंगा को प्यार देकर शशि ने सबका मन जीत लिया।

गंगा ने बी० ए० पास कर ली। अम्मा बार-बार कहती, "शशि, अब गंगा का विवाह हो जाना चाहिए।"

शशि कहती, "मां जी, उसे एम० ए० कर लेने दीजिए। लड़कियों को इस योग्य तो होना ही चाहिए कि वह अपने पैरों पर खड़ी हो सकें।"

"आप क्यों चिन्ता करती हैं, मैं हूं तो।" बाबू जी पहले से अच्छे थे पर चलने-फिरने से मजबूर।

अबकी दीवाली में नरेन्द्र आया। बाबू जी के लिए व्हील चेयर लाया। जबरदस्ती दो-चार बार बैठे बाबू जी, "नहीं बेटा, मैं यहीं ठीक हूं।" लाठी और सहारे से थोड़ा चलने की कोशिश करते।

कैलेण्डर के पन्नों को समय की हवा उड़ाती रही। शशि को जुड़वा बच्चे हुए। एक लड़का एक लड़की। जन्म-दिन के अवसर पर शशि के बड़ी भाभी का भाई भी आया। कानपुर में इंजीनियर है। शशि ने अवसर देखकर बात छेड़ दी। रिश्ता पक्का हो गया। भाभी ने लम्बी-चौड़ी लिस्ट सामानों की बना दी। भइया बोले, "तुमने शशि को क्या दिया था? इसी तरह हम भी कुछ नहीं लेंगे।"

भाभी चिहुंकी, "उससे मुकाबला है क्या ? आखिर इंजीनियर है हमारा भाई।"

तब तक रक्षित आ गया। "क्या बात है, दीदी ! आप किस सदी की बात कर रही हैं? हम दूसरों के भरोसे नहीं जीते हैं। अपनी गृहस्थी बनाने में मैं समर्थ हूं। दीदी, गगा मुझे बहुत पसन्द है।" शशि ने सन्तोष की सांस ली।

गंगा का ब्याह हो गया। वह ब्याह कर कानपुर चली गयी।

सुरेन्द्र पी० सी० एस० में आ गया। उसकी पोस्टिंग मेरठ हो गई। भारी मन लिये सुरेन्द्र को जाना पड़ा।

"आप चिन्ता न करें बाबू जी, मैं आता रहूंगा। शशि है न आपके पास।"

बाबू जी बोले कुछ नहीं, आंखों के नीचे काले कोटरों में जल की बूंदें ढुलक गयीं। सुरेन्द्र आता रहा। अबकी सुरेन्द्र बोला, "अम्मा, आप लोग भी वहीं चलिए। यहां क्या रखा है।"

बाबू जी बोले, "है न बेटा, यह इतना बड़ा पुश्तैनी मकान, कौन रहेगा इसमें ?"

अम्मा ने कहा, "शशि को ले जाओ। तुम्हारा और उसका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है।" सुरेन्द्र नहीं माना। अम्मा ने ज़िद की, "बेटा, शशि को भी तो थोड़ा सुख चाहिए।"

अम्मा की ज़िद के कारण शशि और बच्चे भी मेरठ आ गये। बाबू जी कह रहे थे, "सीता, अब अच्छा नहीं लगता, देखो घर की दीवारें कितनी सन्नाटे भरी हैं। बच्चों की चहल-पहल से घर अच्छा लगता था।"

दोपहर थककर शाम की बांहों में समा गई। बाबू जी सीता को आवाज दे रहे थे। एकाएक लाइट चली गई। सीता दियासलाई ढूंढ़ती रही। बार-बार पुकारने की आवाज सुनकर खीझ उठी, "कभी-कभी चुप भी रहा करो। मैं तो दौड़ते-दौड़ते थक गई हूं।"

हरिबाबू को एहसास हो रहा था, 'सीता भी अब बूढ़ी हो चली है। अपने दुःख में डूबे रहने के कारण सीता का दुःख जाना ही नहीं हमने।' वह आज बहुत चिन्तित थे। उन्होंने एहसास किया कि वह दोनों वृक्ष के

उस पीले पत्ते की तरह हैं। जिनका दर्द भीतर-ही-भीतर दरकता है। कल शाखा से टूटकर गिर जाए, यह भय बना रहता है।

हरिबाबू की पत्नी ने लालटेन जलाकर, दरवाज़े की सिटकनी में टांग दिया। अंधेरा छंट गया था। लालटेट की रोशनी से हरिबाबू कुछ देर तक अपनी पत्नी की मुंह की ओर देखते रहे, "सुनो, मेरी इच्छा है अबकी गर्मियों में सुरेन्द्र, नरेन्द्र, बहुएं और बच्चे सब यहां आयें।"

सीता ने कहा, "अब कौन किसी का मुंडन-तिलक बाकी है। रही नाती-पोतों की बात, वह तो उनके माता-पिता की मर्जी से जहां चाहेंगे, वहां रहेंगे।"

हरि बाबू रोबीली आवाज से बोले, "तुम कैसी बातें करती हो ?" हरिबाबू कह तो गए, पर उनके मन में इस सवाल ने घर कर लिया।

हरिबाबू अकसर निगाहें छत पर टिकाए न जाने क्या सोचते रहते। एकाएक पत्नी से बोले, "सीता, बहुत उबन हो गई है एक ही जगह रहते-रहते। सोचता हूं कुछ दिनों के लिए नरेन्द्र के पास चला जाऊं। कितनी बार बहू ने दिल्ली आने को कहा है।"

सीता देवी बोल पड़ी, "हां-हां, क्यों नहीं। उनका तबादला होगा तो तुम भी साथ चले जाना। क्या तुम्हें अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं ? चलने-फिरने से लाचार हो। एक मैं हूं जो तुम्हारे साथ-साथ जिन्दगी भर हर काम किए हूं। तुम वहां जाकर उनकी परेशानी ही बढ़ाओगे। सारा दिन किससे बातें करोगे ? बहू भी तो नौकरी पर जाती है।"

हरिबाबू चुप रह गये थे। 'सीता ठीक ही तो कहती है। मैं बोझा ही तो हूं। कितना असमर्थ। जाने कब इस जिन्दगी से मुक्ति मिलेगी।' एक लम्बी सांस लेते हुए हरिबाबू ने आंखें मूंद लीं। उनकी जिन्दगी का हर लम्हा बिखरता गया। आंखें, सामने कल्पना के पटल पर बहुत से चित्र बनातीं। कभी बहू-बेटे, नाती-पोतों से भरा घर, कभी सरपट भागते कदम।

अबकी सर्दियों में जिस्म के पोर-पोर में ठण्ड समा गई। वह छूटी ही नहीं। रात-रात भर खांसते बीत जाता। सुरेन्द्र आता कभी बहू भी होती। ज्यादातर अकेले। इधर साल भर में सिर्फ एक बार आया। शशि

की नौकरी, बच्चों की पढ़ाई का हवाला देता। हरिबाबू कहते, "नहीं-नहीं, ठीक है बेटे! बच्चे पढ़ेंगे नहीं तो दादा का नाम कौन रोशन करेगा!"

शाम के पांच बज चुके थे। ऊपर वाले वर्मा जी ऑफिस से आ गये थे। वर्मा जी नियम से रोज शाम आकर बाजार से जरूरत की चीज़ें ला दिया करते थे, बहुत दिनों से किराये पर रहे हैं। बच्चे गांव में अपने दादा-दादी के पास रहते हैं। वर्माजी को आता देखकर हरिबाबू बोले, "आइये वर्मा जी! पांच बजे के बाद मैं आपका ही इन्तजार करता हूं। अब आप ही तो हमारे लिए बहुत अपने हैं। नरेन्द्र, सुरेन्द्र बहुत आना चाहते हैं, पर नौकरी उन्हें छुट्टी नहीं देती। अफसरों के साथ यही परेशानी। सारी जिम्मेदारी उन्हीं पर है न। सुरेन्द्र ने तो तबादले की बहुत कोशिश की। परन्तु आजकल तो वर्मा जी, सब भ्रष्टाचार है, रिश्वतखोरी है। फिर बुढ़ापे में तो अकेले सभी को रहना ही पड़ता है।" हरिबाबू के नेत्रों के कोर गीले हो उठे थे। वर्मा जी हरिबाबू का दुःख पहचानते थे। उन्होंने तुरन्त बात का रुख बदल दिया। हरिबाबू की पत्नी चाय लेकर आ गई।

हरिबाबू बोले, "सीता, गर्मियों में बच्चों को बुलाने का खत डाल दो। बच्चों के स्कूल बन्द हो जायेंगे। वर्मा जी से सारा सामान मंगवा लो। एक फेहरिस्त सामानों की बना लो। राशन कार्ड से चीनी मंगवा लो।" एकाएक गद्‌गद होकर बोले, "अबकी रक्षाबन्धन पर छोटी बहू को यहीं रोक लेंगे। बच्चों से ही तो तीज-त्योहारों की रौनक होती है।" इतना कहने के बाद एक लम्बी चुप्पी साध ली हरिबाबू ने। उन्हें मालूम है, छोटी बहू बच्चों के स्कूल का हवाला देगी। नरेन्द्र भी अपने ऑफिस वर्क लोड की बात करेगा।

हरिबाबू के मन में सुधियों का उतार-चढ़ाव वर्मा बाबू की अनुभवी आंखों से अनछुआ न रहा। उन्होंने हरिबाबू के हृदय पर जमा ग्लेशियर पिघलते देखा।

दूसरे ही दिन हरिबाबू की हालत बिगड़ती गई। वर्मा जी भागकर दोनों बेटों को तार दे आये। रात सुरेन्द्र और नरेन्द्र का परिवार पहुंच गया। गंगा भी आ गयी थी। बेटों के आने से हरिबाबू में जैसे चेतनता आ गयी। वह उठकर बैठ गये। बहुत-सी बातें करते रहे। ऐसा लगा, बाबू

ठीक हो रहे हैं। रात देर तक बाबू जी ने भरे-पूरे परिवार से जी भर-कर बातें कीं। बहुत रात गये थककर सो गये। घर के सभी लोग सोने चले गये। सुरेन्द्र और उसकी पत्नी भी। सुबह उगते हुए सूरज की एक किरन भी नहीं देख पाये हरिबाबू। उनका तेजपूर्ण संतुष्ट चेहरा चिर-निद्रा में निमग्न था। संभवतः उन्हें मालूम था उसके बेटे, बेटी, पोते सब आ चुके हैं। अब उनकी कोई मजबूरी उन्हें आप से जाने को मजबूर नहीं कर पायेगी। कम-से-कम तेरहवीं तक तो सब यहीं रहेंगे।

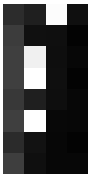

सुगनी

रमा ने कॉलेज से आकर सीधे रसोईघर में झांका। ढेर से बर्तन उसका इन्तज़ार कर रहे हैं। वह अपने कमरे में चली गई। पर्स अनमने मन से चारपाई पर पटक दिया। और बिना कपड़े बदले ही लेट गई। आज हफ्ते भर से उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है। कॉलेज में 7 घंटे पढ़ाने के बाद घर आकर बर्तन, खाना इतना कुछ करते-करते थक जाती है रमा। बच्चे बाहर पार्क में खेलने चले गये हैं। अमित अभी ऑफिस से नहीं आए हैं।

रमा हिम्मत बटोरकर उठी, चाय बनायी। चाय का प्याला लेकर बालकनी में आ गई। उसकी निगाह पार्क में खेल रहे बच्चों पर पड़ी। वह सोचने लगी। बचपन जिन्दगी का कितना प्यारा वक्त होता है। पर पलक झपकते ही बीत जाता है। उसने चाय की आखिरी चुस्की ली। उसके सर का दर्द कुछ हल्का हो गया था। रमा की निगाह सड़क से जाती एक स्त्री पर टिकी। लगता है कोई बर्तन साफ करने वाली है। रमा के चेहरे पर हल्की-सी धूप खिली। उसे विश्वास हो चला था। यह स्त्री महरी ही है। रमा ने उसे आवाज लगाई। जरा सुनो। स्त्री के साथ एक दस वर्ष की लड़की भी थी। जिसकी गोद में एक बालक था। उसने अपनी मां से कहा, "वह बुला रही हैं।"

स्त्री ने ऊपर ताका, "अभी काम पर जा रही हूं।"

"काम की ही तो बात करनी है।" स्त्री ठिठकी रमा ने कहा, "पीछे

जा रही है । उठती काहे नहीं ?" सुगनी हड़बड़ाकर उठ बैठी । उसके दांत किटकिटा रहे थे । ठंड के मारे उसने अपनी दोनों कुहनियां पेट के भीतर धंसा रखी थीं। उसने दोनों हथेलियों से अपने गाल पकड़ रखे थे । "जल्दी से उठ खड़ी हो मेरी बच्ची, चाय बना दी है, पी लीजो । सब काम निपटा कर धरियो । मैं काम पर जा रही हूं ।" अम्मा यह सब रोज ही तो दुहराती है ।

सुगनी ने चाय पी, थाली से ढकी रोटियां खायीं । दालान बुहार रही थी तभी बब्बू के रोने की आवाज आई । उसने झाड़ू छोड़कर, भाई को गोद में उठा लिया । दस वर्ष की लड़की के चेहरे से वात्सल्य झलक रहा था । दुलार से भाई के सर पर हाथ फेरती जाती । "बबुआ, मेरा भइया राजा है, चन्दा है ।" वह सुटुर-सुटुर चाय पी रहा था । सुगनी ने रोटी के दो-चार टुकड़े मसलकर चाय में डाल दिये जिन्हें वह बीच-बीच में उसके मुंह में डालती जाती ।

सुगनी ने उसे गोद से उतारकर जमीन पर छोड़ दिया । वह खेलने लगा । सुगनी भात चढ़ाने लगी । तभी बबुआ लुढ़ककर चौखट से चोट खा गया । लक्ष्मी काम पर से लौट आई थी । बोली, "रसोई कर ली सुगनी ?"

"कहां अम्मा, बबुआ चोट खा गया, उसी को सुला रही हूं ।"

लक्ष्मी चीत्कारी, "तुझसे तो कुछ भी नहीं होता री । कल को ससुराल जाएगी तब क्या करेगी ?" सुगनी की आंखों से दो बूंदें टपकीं फिर थम गईं ।

लक्ष्मी ने बबुआ को चुप कराते हुए उठाया । गोदी में लेकर अपने सूखे स्तनों को उसके मुंह में डाल दिया । सुगनी रसोई में चली गई । उसका मन भात बनाने में नहीं लग रहा था । 'क्यों अम्मा मुझे ही झिड़कती रहती है । उसका सारा गुस्सा हम पर ही उतरता है ।'

वह बाहर ओसारा झाड़ने चली गई । उधर से काकी ने पूछा, "लक्ष्मी आ गई, सुगनियां ?"

"हां, काकी, भीतर बबुआ के पास हैं ।"

काकी अब तक भीतर आ चुकी थी, "आ गई लक्ष्मी ?"

"हां दीदी, आओ।"

"सुगनियां को काहे नहीं पढ़ने डाल देती लक्ष्मी। सारा दिन घर में घुसी दादी-अम्मा जैसी काम करती रहती है।"

"खूब कहा दीदी, सुगनियां पढ़ने चली जाएगी तो घर कौन संभालेगा। बबुआ को कौन खिलाएगा?"

"हां, यह मजबूरी तो है। अच्छा हम चलते हैं!" काकी के जाने के बाद मां-बेटी ने खाना खाया।

सुगनी बर्तन मांजने बैठ गई। उसके नन्हे हाथ पतीली की कालिख नहीं छुड़ा पा रहे थे। लक्ष्मी ने उसके हाथ से पतीली छीन ली, "ला दे मुझे कलमुंही। तनिक जोर लगाकर मांजा कर।" सुगनी जोर लगाकर बर्तन मांजने लगी।

लक्ष्मी बोली, "कल शर्मा साहब के घर चलना है। पिंकी बिटिया की सालगिरह है। तुझको भी लाने को मेमसाहब ने कहा है।"

"अच्छा!" सुगनी खुशी से बोली, "अम्मा, हम बुनकी वाली घाघरी पहनेंगे।"

आज सुगनी भिनसहरे ही उठ गई। दालान झाड़ दिया। पानी भर लायी। अम्मा को चाय बनाकर थमा गई। लक्ष्मी अचम्भे में थी। फिर संतोष की सांस लेते हुए बुदबुदायी, "कितना आराम देती है सुगनी। कल को ससुराल चली जाएगी। लड़की तो पराया धन है। एक-न-एक दिन तो उसे किसी के घर जाना ही है।" अकस्मात् लक्ष्मी को अपने पति की याद आ गई। बुधुआ कितना शराब-गांजा पीता था। सारी कमाई उड़ा देता था। मना करने पर मार-पीट करता था। एक दिन अचानक जाने कहां चला गया। आज तक लौटकर नहीं आया। एकाएक उसे ध्यान आया मेमसाहब ने जल्दी आने को कहा है।

सुगनी नहा-धोकर लाल बुनकी वाली घाघरी पहनकर आ गई। लक्ष्मी ने कानों पर दो चोटियां बांध दीं।

लक्ष्मी बच्चों को लेकर शर्मा जी के घर पहुंची। जल्दी-जल्दी बर्तन साफ किए। फिर घर की सफाई में लग गई। सुगनी उसके साथ लगी रही। पिंकी ने गुलाबी घेरदार स्कर्ट पहन रखी थी। उसके बालों के गोल

छल्ले हवा में लहरा रहे थे।

सुगनी सोच रही थी। कितनी सुन्दर है पिंकी। उसकी गुलाबी स्कर्ट, चिकनी मक्खन-सी। सुगनी का मन हुआ उसकी स्कर्ट छूकर देखे। तभी अम्मा की आवाज गूंजी, "आ जा बच्ची, जल्दी से आकर आलू छील डाल।"

सुगनी के हाथ तेजी से आलू के छिलके उतारने लगे। आज पिंकी का जन्मदिन है। पिंकी की ढेर-सी सहेलियां आई हैं। वह रंग-बिरंगे कपड़ों में कितनी सुन्दर लग रही है। सुगनी उन्हें ललचाई दृष्टि से देख रही है। यह सब स्कूल जाती होंगी।

कितना अच्छा होता, वह भी पढ़ने जाती। उसकी भी बहुत-सी सहेलियां होतीं। अम्मा ने हमको पढ़ने क्यों नहीं भेजा?

जबसे सुगनी पिंकी के घर से आई है, गुम-सुम है। बहुत हिम्मत करके बोली, "अम्मा, हम पढ़ेंगे। हमें भी स्कूल भेज दो न?"

"अच्छा, तो स्कूल जाएगी तू? मास्टरनी बनेगी क्या? पर बेटी, तुझे तो शादी के बाद भी यही सब करना है।"

सुगनी चुप रही। उसके चेहरे पर आक्रोश था। सपने में सुगनी ने स्कूल ड्रेस पहन रखा है। कानों पर दो चोटियां, कंधे पर बस्ता लटकाये सुगनी स्कूल की तरफ जा रही है। तभी अम्मा की आवाज से चौंक पड़ी।

"सुबह हो गई बेटी, उठ। मैं काम पर जा रही हूं।" उसे स्वप्न-भंग अच्छा नहीं लगा।

समय बन्द मुट्ठी की रेत-सा झरता गया। सुगनी ने सोलह बसन्त पार कर लिये। उसका रूप निखर आया था। उसकी आंखों का आकर्षण बढ़ता गया। अब अम्मा काम पर चली जाती, वह आले में रखे एक टूटे शीशे में अपनी छवि देखती, मुसकराती फिर खिलखिलाती। कभी चकरघिन्नी की तरह गोल घूम जाती। कभी अनायास ही बबुआ को चूम लेती।

उसे भोलवा को देखना अच्छा लगता। भोलवा के पान की दुकान उसके घर से साफ दिखती है। वह किसी-न-किसी बहाने से बाहर आकर

एक नजर नुक्कड़ की गुमटी पर जरूर डाल लेती।

अम्मा आज काम पर से जल्दी लौट आई। सुगनी से बोली, "मेरा जी अच्छा नहीं सुगनी, कल से तू ही मेमसाहब का काम कर आना।"

सुगनी ने मां का माथा छुआ, "अरे तुझे तो बुखार है, अम्मा ! चलो लेट जाओ। आराम करो।"

सुगनी को देख मिसेज शर्मा बोलीं, "आज तू कैसे आई सुगनी ?"

"अम्मा को बुखार आ गया है।"

"अरे ! अच्छा, चल जल्दी से काम निबटा दे। तू आ गई अच्छा किया। मुझे भी स्कूल जाना जरूरी है।"

मिसेज शर्मा सुगनी के सौन्दर्य को देखकर हैरान थीं। आंखें हिरनी-सी, सांवला बदन पर भरपूर। रसोई के भीतर से एक मीठी आवाज गूंजी, "दूध उबल रहा था, हमने उतार दिया दीदी।" चटपट साफ-सुथरा काम करके सुगनी चली गई। मगर उनके दिलो-दिमाग में उसका लावण्य छाया रहा।

इधर एक हफ्ते तक सुगनी ही काम करने आती। वह कपड़ों पर प्रेस, सफाई करती, एक-एक सामान को खूबसूरती से लगा देती। बालकनी में रखे गमलों में पानी डालती। उसकी देखरेख में पौधे हरियरा उठे थे। मैं कभी-कभी सोचती—सुगनी जिस घर ब्याह कर जायेगी, वह घर स्वर्ग बन जाएगा।

इधर लक्ष्मी अब स्वस्थ होकर काम पर आने लगी। सुगनी के आने से मुझे अपनी गृहस्थी सूनी लगती। मैं तो इतना समय स्कूल में गुजार आती। फिर थकी-थकाई। बच्चे भी सुगनी को पूछते रहते। यहां तक की रीतेश भी पूछ बैठे, "आजकल सुगनी नहीं आ रही है।"

रमा ने कनखियों से रीतेश की तरफ देखा फिर मुसकरा दी, "बहुत अच्छी लड़की है। इन गरीबों की लड़कियां भी कितनी सुखद और सुन्दर होती हैं। रीतेश ! इतनी तेज बुद्धि है उसकी, पर बेचारी पढ़ाई-लिखाई से वंचित है। पता नहीं उसे कैसा घरबार मिलेगा।"

"हां रमा, एक दिन अनु से कह रही थी, 'भइया, हमें भी हमारा नाम लिखना सिखा दो।' और उसने सीख भी लिया।"

"अच्छा !"

लक्ष्मी काम पर से लौट आई थी। देखा सुगनी सामने नुक्कड़ वाली पान की दुकान पर बैठे भोलवा से हंस-हसकर बतिया रही है।

वह सुगनी का हाथ खींचती, धकियाती हुई कोठरी तक ले आई। चूल्हे से एक जली लकड़ी निकाल कर पीठ पर दाग दिया।

सुगनी की कोमल खाल सब कुछ सह गई। हल्ला सुनकर काकी आ गई, "क्या हुआ लक्ष्मी ?"

लक्ष्मी बिलबिलाकर रो पड़ी, "यह उस पनवाड़ी से प्रेम कर रही है, दीदी।"

"हम लोगों की भी तो गलती है लक्ष्मी। सुगनी जवान हो गई है। हमने उसके लिए कभी सोचा ? न उसे पढ़ाया, न लिखाया। न ही उसके ब्याह-शादी के बारे में विचार किया।"

"कहां से करें ब्याह ? शादी-ब्याह खाली हाथ तो होता नहीं दीदी ! कुछ दान-दहेज तो जुटाना ही पड़ता है।"

"धीरज रखो लक्ष्मी। दीनू साह से बात करेंगे। उसकी पहली बीवी मर गई है। दो बच्चे हैं सयाने। बहुत सुख-चैन से राज्य करेगी सुगनी।"

सुगनी कान लगाये सुनती रही। मन के भीतर कांच दरकता रहा। वह चिहुंकी। वह नहीं करेगी यह शादी।

पर किसके बूते वह ऐसा कहती। उस बाप के भरोसे जो अपने दायित्वों से पीठ मोड़कर घर त्यागकर चला गया ? या मजदूरन के भरोसे जो मेहनत करके चार पेटों के लिए रोटी जुटाती है ? रात बहुत देर तक सुगनी की आंख नहीं लगी, वह सोचती रही। सुबह जब उसकी आंख खुली, अम्मा काम पर जा चुकी थी। बबुआ सो रहा था। उसका जी हुआ, खूब ज़ोर-ज़ोर से रोये पर उसने ऐसा नहीं किया। सारा काम निबटाया। अम्मा आई, उसे खाना दिया। बर्तन मांजने बैठ गई। ओसारे से ही काकी का स्वर सुनाई पड़ा, "कहां है लक्ष्मी ?"

"हां, आओ दीदी।"

काकी फुसफुसाती हुई लक्ष्मी के कान में बोली, "मामला फिट समझो। तुम्हें एक पैसा नहीं खर्च करना पड़ेगा। दीनू साहू को बड़ी मुश्किल

से राजी किया है।"

आखिरी शब्द सुगनी के कान से टकराये। वह भागकर ओसारे में आई। काकी के पैर पकड़ लिये, "हमारा ब्याह उससे मत करो काकी।"

"अरे तू अभी बच्ची है। तू क्या जाने, धन की कितनी माया है। और मरद तो साठा भी पाठा।"

"नहीं काकी, हमें नहीं करना शादी-ब्याह।"

लक्ष्मी बोली, "तो सारी उमर कुंआरी बैठकर हमारी छाती पर मूंग दलेगी?"

"नहीं अम्मा, हम भी मेहनत-मजदूरी करेंगे।"

लक्ष्मी ने काकी से हामी भर दी।

रमा जल्दी-जल्दी नाश्ता निबटाकर नहाने जा रही थी। लक्ष्मी ने पीछे से टोका, "मेमसाहब, जरा आपसे कुछ कहना था।"

"बोलो लक्ष्मी, क्या बात है?"

"मेमसाहब, सुगनी के ब्याह के लिए कुछ पैसा पेशगी चाहिए।"

"हां, जरूर दूंगी। कहां तय किया?"

"यही शहर में मेमसाहब, अच्छा कमाता है। खूब सुखी रहेगी सुगनी।"

"अच्छा, यह तो खुशी की बात है।"

पैसों का बन्दोबस्त हो जाने से लक्ष्मी खुश थी। घर आकर उसने सुगनी को कई बार ममता-भरी नजरों से देखा। लक्ष्मी के हृदय का जल पसीज कर आंखों के रास्ते बह निकला।

काकी की आवाज सुनकर लक्ष्मी संयत हो ली। उसने अपने अंचरे से आंसू पोंछ लिया। काकी बैठते ही बोली, "बड़ी चिरउरी की है हमने साहू को। पूरा भरोसा दिलाया है कि सुगनी उनके घर को खूब अच्छी तरह संभाल लेगी। हां, नेक काम में अबेर करना ठीक नहीं। इसी माह की 10 तारीख पक्की हुई है।"

आखिर वह दिन भी आ गया। सुगनी ब्याह दी गई। सुगनी इतना बड़ा मकान देख हैरान थी। उसी के उम्र के साहू के दो बेटे थे। साहू पहली रात को सुगनी से बोले, "यह सब धन, मकान, जायदाद तुम्हारा है

सुगनी। दो वर्ष पहले हमारी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। तबसे गृहस्थी अस्त-व्यस्त हो गई। अब तुम सब कुछ संभाल लो। हमारा क्या, हम तो दिल के मरीज हैं। कब बुलावा आ जाये।" सुगनी चुपचाप सुनती रही। उसे साहू जब भी छूता, लगता उसका बापू सामने खड़ा है। साहू ने तिजोरी की सुगनी को थमा दी।

सुगनी ने कहा, "यह क्या ? मैं क्या करूंगी।"

"नहीं सुगनी, इस पर तुम्हारा अधिकार है।" सुगनी ने कर्तव्य का संकल्प ले लिया। वह दोनों बेटों और साहू का पूरा ध्यान रखती। दोनों बेटों से वह बात करना चाहती पर वे उससे कतराते। सुगनी सारे अपमान सह जाती। अठारह वर्ष की सुगनी के चेहरे पर चिन्ता और दर्द की लकीरें साफ पढ़ी जा सकती थीं। दिन गुजरते गये, साहू का शरीर दिन-ब-दिन कमजोर होता जा रहा था। इधर सुगनी की आंखों के नीचे काले धब्बे उसका मुरझाया चेहरा उसके मन के भीतर उबलते अलाव की कहानी कह जाते।

एक दिन शाम ढलते ही साहू घर आ गये। वह सुगनी से बोले, "मेरा जी अच्छा नहीं, मुझे दो गोली दे दो।" सुगनी उन्हें दवा देकर कम्बल ओढ़ाकर आ गई। सुबह जब वह उनके कमरे में गई, साहू संसार छोड़ चुके थे। घर में कुहराम मच गया। सुगनी की कोरी देह सफेद वस्त्रों से ढक गई। अभी पिता के चिता की आग भी ठंडी नहीं हुई थी कि बेटों ने कहा, "हमें आपकी जरूरत कभी नहीं थी और न अब है।"

सुगनी चुपचाप सुनती रही उसने चाभी का गुच्छा उन्हें थमा दिया। वह कमरे में आकर फूट पड़ी। उसने निश्चय कर लिया था। वह अम्मा के पास चली जायेगी। वह उठी और मां के घर की तरफ चल दी। लक्ष्मी सुगनी को देख दहाड़ मारकर रोने लगी। मुहल्ला जमा हो गया।

सुगनी की अविचल, अर्थहीन आंखें मां से कह रही थीं—चुप हो जा अम्मा, ऐसा तो होना ही था। यह तुमने पहले क्यों नहीं सोचा ?

स्नेह-सेतु

बड़के भइया ही तो घर की रीढ़ हैं। जबसे बाबूजी नहीं रहे, बड़के भइया ही हमारी देख-रेख करते रहे। जिस समय बड़के भइया नौकरी पर लगे, सिर्फ अठारह साल के थे। बाबू जी आई० वी० आर० ई० में चीफ स्टोर कीपर थे। भइया के बाद मैं और सबसे छोटा सुहास। भइया ने नौकरी के साथ-साथ पढ़ाई जारी रखी। बी० ए० का फार्म हम दोनों ने साथ ही भरा। भइया ने फाइनल और हमने प्रीवियस का। कभी-कभी मुझे शर्म आती। हट्टा-कट्टा, देखने में भइया से बड़ा लगता। दोहरा सांवला बदन, चश्मा भी लगाता। सभी लोग मुझे बड़ा भाई कहते, मैं झेंप जाता। इधर अम्मा सोचती, अब भइया की शादी तय कर दी जाए। "हां, मुझसे अब काम-धन्धा नहीं होता। तुम्हारे बाबूजी के चले जाने से किसी काम में जी नहीं लगता। अब घर में बच्चों की किलकारियां गूंजें तो मन लगा रहे।"

"हटो अम्मा, तुम भी।" बड़के भइया कहते, "मैं पढ़ूंगा अम्मा, एम० ए० करूंगा। इस स्टोरकीपर को कौन देगा अपनी लड़की ?"

"चुप कर, मेरा लाल तो हीरा है।"

मैं अम्मा की बातें सुनता पर चुप रहता। अम्मा को बड़के भइया के जीवन को दांव पर लगाने का क्या हक है ? बेचारे इतनी छोटी उमर में कर्त्तव्यों के बोझ तले दब गये। रात हम दोनों साथ ही पढ़ते। परीक्षा करीब थी। मुझे पानी डालकर जगाते। सुहास की पढ़ाई का भी पूरा

ध्यान रखते। ऑफिस से लौटने पर सबसे पहले अम्मा को और फिर सुहास को आवाज़ देते। जब तक सबको देख नहीं लेते, उन्हें चैन नहीं पड़ता। परीक्षा के दिनों में भइया ने ऑफिस से छुट्टी ले ली थी।

उनके बॉस मि० सलूजा बहुत नर्मदिल थे। "ठीक है विकास, तुम परीक्षा दो इत्मीनान से।"

भइया सारी रात पढ़ते। परीक्षाएं हो गयीं। भइया द्वितीय श्रेणी में पास हुए। मैं प्रथम आया। मैं अवाक् था। फिर दिमाग पर बहुत ज़ोर डाला। भइया के दिमाग पर परीक्षा के अलावा, मेरी, सुहास और मां की चिन्ता का बोझ भी तो है। भइया बहुत खुश थे। ऑफिस से आते हुए मिठाई का पैकेट ले आए। मेरे मुंह में एक लड्डू ठूंस दिया था। "अब जल्दी से एम० ए० कर ले और अफसरी के इम्तहान दे।"

"हां भइया, मैं और भी मन लगाकर कम्पटीशन की तैयारी करूंगा।" भइया ने मेरी पीठ थपथपाई। मैंने उनके चरण छुए। यूं तो भइया मुझसे दो वर्ष ही बड़े हैं पर पिता तुल्य। भइया अब बाईस वर्ष के थे और मैं बीस का।

अम्मा ने भइया के लिए लड़की पसन्द कर ली। पास के ललितपुर के वैद्य सुमेरचन्द्र की बेटी। पढ़ी-लिखी सुशील। घर के कामकाज में प्रवीण।

अम्मा ने भइया से कहा, "तू भी लड़की पसन्द कर ले। ललितपुर यहां से बीस किलोमीटर ही तो है। रोज स्कूल पढ़ने जाती है स्नेहा। अबकी बारहवीं का इम्तहान दे रही है।"

भइया लजा गये थे, "मैं क्यों जाऊं। इसे भेजो सुभाष को। इसके लिए लड़की मैं पसन्द करूंगा। मेरे लिए यह।"

अम्मा हंस पड़ी थी। इतने दिनों बाद अम्मा के चेहरे पर हंसी खिली धूप-सी लगी। मैंने ललितपुर जाने का कार्यक्रय बना लिया। सोमवार के सबेरे दस बजे स्कूल के पास के ही चाय की दुकान पर मैं बैठ गया। अम्मा के बताये हुए सभी चिह्नों को ध्यान में रखे था। अधिक पहचान के लिए सुहास मेरे साथ था। वह पहले भी अम्मा के साथ ललितपुर आया था।

बुआ के घर स्नेहा और उसके माता-पिता आए थे। रस्म नहीं हुई

थी, मगर अम्मा ने लड़की पसन्द कर ली थी। ज्योंही स्नेहा आई सुहास ने इशारा किया, "मंझले भइया, यही है भाभी।"

मैंने उन्हें देखा तो आंखें फटी रह गयीं। बड़ी-बड़ी काली आंखें, चोटी कमर तक झूलती। हल्के नीले रंग के सलवार कुर्त्ते में गुड़िया-सी भाभी। मैंने उन्हें कल्पना में सजा-संवरा देखा। मन मुग्ध हो उठा। हम वापस घर आ गये।

हमने भइया से कहा, "वाकई अम्मा की पसन्द का जवाब नहीं।" शादी की तैयारियां शुरू हो गईं। बाज़ार का सारा काम मुझे ही करना पड़ता। साड़ी, जेवर, चप्पलें सब मेरे पसन्द की आतीं। शादी में भइया वैसे भी सादे ढंग से रहे।

मैं कहता रहा। भइया बोले, "नहीं सुभाष, मैं ठीक हूं।" फिर भी भइया का सांवला-चम्पई रंग शेरवानी-चूड़ीदार पाजामे में निखर आया। शादी बहुत अच्छी तरह सम्पन्न हो गई। भाभी के आने से घर में उजाला हो उठा। भाभी का मुसकराता चेहरा, घर में खुशियां भर देता। भइया भी बात-बात पर हंसते। मैं और सुहास बहुत खुश थे। सुहास हर समय भाभी से चिपका रहता। भाभी मुझे भी बहुत अच्छी तो लगतीं, पर मैं ज्यादा देर उनके पास नहीं बैठता।

भइया के विवाह के चार वर्ष हो गये। भाभी ने दो पुत्रियों को जन्म दिया। अम्मा उदास हो गई। बात-बात पर चिढ़ती। भाभी को बात-बात पर उलाहना दिया करती। भइया अम्मा से कुछ नहीं कह पाते। मैं अम्मा को अकसर समझाता।

मैं अपनी एम० ए० की परीक्षा देने के बाद, इलाहाबाद चला आया। वहीं मेरी नौकरी अंग्रेजी अध्यापक के बतौर, स्थानीय विद्यालय में लग गई। अपनी नौकरी और कम्पटीशन में मैं बहुत उलझ गया।

छुट्टियों में मैं घर आया। इन चार वर्षों में घर में काफी तब्दीलियां आ गईं। भइया बहुत कमजोर लगे। भाभी चिड़चिड़ी हो गई थी। बात-बात पर मानू और शानू को मारती। अम्मा अब बूढ़ी लगने लगी है। मुझसे बोली, "अब तू भी शादी कर ले। रिश्ते आ रहे हैं। पोते का मुंह देखने को मैं तरस रही हूं।" भाभी आंगन में अरगनी पर धोती पसार रही

थी। झटके से कमरे में चली गई । शाम को भइया घर आए। मुझे देख कर बहुत खुश हुए।

"हां सुभाष, अब अम्मा तेरे विवाह की ठीक ही तो कहती है। चिट्ठी में तो तू गुम रह जाता है। अब तू कमाने लगा है पगले !"

"अभी कम्पटीशन दूंगा भइया।"

"ठीक है, मैं भी तो चाहता हूं, तू बड़ा अफसर बने।"

"अबकी सुहास को अपने साथ ले जाऊं भइया ? वहीं इलाहाबाद में नाम लिखवा दूंगा। अम्मा भी एक जगह रहते-रहते ऊब गई है। थोड़ी तब्दीली हो जाएगी।"

"अगर उनकी मर्जी है तो ठीक है। कुछ दिन रहकर वापस आ जाएंगी।"

अम्मा तैयार हो गई। सुहास, अम्मा को साथ लेकर मैं इलाहाबाद आ गया। दो छोटे कमरे। एक में मैं, दूसरे में अम्मा और सुहास रहने लगे। अम्मा के आने से घर का बना खाना मिलता। एक दिन पड़ोस के वर्मा साहब आ गये।

"मैं आपके पास ही रहता हूं।" उनके साथ उनकी पत्नी और बेटी भी थीं। उन्होंने परिचय करवाया।

"यह मेरी बेटी वन्दना है। इंटर की परीक्षा दे रही है। आप तो अंग्रेजी पढ़ाते हैं। कभी-कभी कोई कठिनाई हो तो तनिक बतला दिया करें।"

"क्यों नहीं।"

थोड़ी देर बाद वर्मा जी परिवार सहित चले गये। अम्मा एक माह रही। फिर वापस जाने की जिद करने लगी।

"यहां मकान बहुत छोटा है सुभाष। आंगन चबूतरा नहीं। अबकी मुझे छोड़ आना।"

"अच्छा, ठीक है।" अम्मा चली गई।

वन्दना अब लगभग रोज ही अंग्रेजी की किताब लिये पहुंच जाती। कभी पूरा लेसन ही पढ़ने, कभी निबन्ध-ग्रामर।

धीरे-धीरे मुझे भी वन्दना का आना अच्छा लगने लगा।

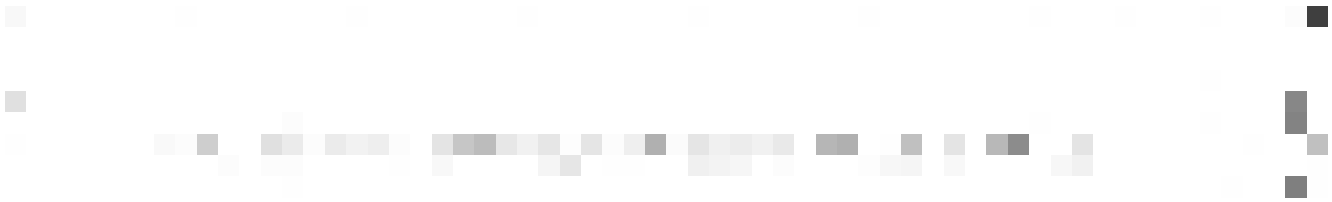

वन्दना अपने घर से खाने-पीने का सामान भी ले आती। मेरा काफी खयाल भी रखती। अबकी जाड़े में उसने मेरे लिए एक पुलोवर भी बना दिया। मैं धीरे-धीरे वन्दना की ओर आकर्षित होने लगा। कहीं मैंने अपने मन में यह तय कर लिया कि वन्दना से शादी करना अहितकर नहीं होगा। वन्दना को भी यह मालूम हो गया था। वर्मा जी पूरी तरह आश्वस्त हो गये थे। मैंने सोचा अबकी छुट्टियों में अम्मा से कह दूंगा।

अबकी दशहरे की छुट्टियों में घर आकर देखा; भइया बीमार थे। उनका हड्डियों से भरा जिस्म देखकर मैं भयभीत था।

"अम्मा, यह भइया को क्या हुआ ?" अम्मा फूट-फूट कर रो पड़ीं।

"डॉक्टर की दवाएं चल रही हैं। स्नेहा के पिता जी भी देख गये। जाने कौन-सा रोग लग गया मेरे लाल को। स्नेहा भाभी पत्थर-सी रात-रात भर भइया के पास बैठी रहती। मैं डॉक्टर से मिला। उन्होंने बताया, भइया को छाती का कैन्सर है। अब कोई होप नहीं। मैं डॉक्टर के यहां से लौटा तो भाभी का सामना नहीं कर पाया।

मानू, शानू अब छह और आठ वर्ष की हो गई हैं। भाभी के वैधव्य का रूप···? नहीं-नहीं, ऐसा संभव नहीं है। "मैं भइया को इलाहाबाद ले जाऊंगा।"

"अब कोई फायदा नहीं देवर जी। ईश्वर की यही नियति है। यह मेरा दुर्भाग्य है।"

भाभी का चेहरा भरी उमर में झुरियोंदार लग रहा था।

काल के हाथों भइया का जीवन छिन जाना हमारे परिवार के लिए हादसा बन गया। मैं भाभी का रूप देखता तो सांप लोट जाता। कतरनों से झांकती चांदनी को राहु ने ग्रस लिया। भाभी का कॉलेज के समय का रूप और आज का रूप सामने देखता तो चिनारों के पत्तों के ढेर पर करीलों के जंगल नज़र आते।

समय के पाखियों ने आसमान का लम्बा सफर तय कर लिया था। मानू और शानू अब आठवीं और दसवीं में पढ़ रही थीं।

मैं पी० सी० एस० के कम्पटीशन में आ गया था। सुहास मेडिकल पढ़ने कानपुर चला गया। मैंने वन्दना के बारे में अम्मा को कुछ नहीं

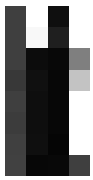

बताया। मैंने अपना फैसला बदल लिया था। अबकी घर आया तो अम्मा के कंधे पर सर रखकर खूब रोया। लगभग एक घंटे बाद अम्मा से बोला, "अम्मा, हमने अपनी पोस्टिंग यहीं की ले ली है।" बहुत हिम्मत बटोरता बोला, "अम्मा, भाभी मेरे लिए भाभी ही हैं। सिर्फ भइया के बच्चों को मैं अपना नाम दूंगा। वे बिना बाप की नहीं हैं। मेरे और भाभी के बीच कोई शारीरिक रिश्ता नहीं होगा। केवल भाभी के माथे पर सूनापन और सफेद साड़ी नहीं होगी। मैं नहीं जानता इस रिश्ते का क्या नाम होगा भाभी। इस सम्बन्ध को निभाकर अपने भइया की आत्मा को शान्ति पहुंचा सकूं। मानू और शानू के जीवन को पिता के प्यार की खुशबू से भर सकूं तो मेरा यह जीवन सार्थक होगा।"

"इतनी बड़ी कुरबानी की हकदार मैं नहीं हूं देवर जी।"

"इस नये सम्बन्ध के स्नेह-सेतु को मजबूत बनाइए भाभी। हमें भइया के लिए ही ऐसा करना है। जिन्होंने हमारे लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया।"

अम्मा ने आगे बढ़कर मेरे सर पर हाथ धर दिया और भाभी मुझे एकटक देखती रही।

आक्रोश

कॉलेज कैम्पस को चारों तरफ़ से पुलिस ने घेर रखा है। छात्रों ने कक्षाओं का बहिष्कार कर दिया है। बस स्टेशन पर सरकारी बसें फूंक दी गयीं। आरक्षण विरोधी छात्रों का विशालकाय जुलूस बाजारों, चौराहों से होता हुआ सिविल लाइन्स तक पहुंच गया है। हजारों छात्र तख्तियां लटकाए, आरक्षण विरोधी नारे लगा रहे हैं ! कुछ लड़के बूट पालिश कर रहे हैं, कुछ भीख मांग रहे हैं। नीरा के पीछे कुछ लड़कियां उपलों भरी टोकरी सर पर लिये आगे बढ़ रही थीं। कुछ एक के सर पर लकड़ी के गट्ठर हैं। कुछ छात्र नंगे बदन हाथों में मशाल लिये आगे बढ़ रहे हैं। छात्रों का जुलूस चौराहे तक बढ़ कर थम गया है। रास्ता जाम है।

चौराहे पर रुकी, गाड़ी में से डी. ई. जी. खन्ना ने अपनी बेटी नीरा को देखा। वह छटपटा कर रह गए। तभी पुलिस ने आकर छात्रों पर अश्रु गैस का प्रयोग किया। छात्रों की भीड़ तितर-बितर हो गयी। रास्ता साफ़ हो गया। खन्ना साहब की गाड़ी सड़क के सीने को रौंदती आगे बढ़ गयी।

"गाड़ी पीछे की तरफ से निकाल लो"—खन्ना साहब ने कहा।

"जी, साहब" कहता हुआ रोहित कार की स्टेयरिंग घुमाने लगा। उसके मन के चौराहे पर खड़े प्रश्न उससे पूछ रहे थे, 'तुम भी तो ब्राह्मण परिवार के लड़के हो। अर्थशास्त्र और संस्कृत में एम०ए० हो। आज ड्राइवरी कर रहे हो।' उसे वह दिन रेल की पटरियों पर भागते हुए डिब्बों-से लगे,

जब पैसों का बन्दोबस्त न हो पाने के कारण बहन सोनी का रिश्ता लौट आया था। डिग्रियां लेकर नौकरी के लिए भागते उसके पैरों के छाले उसे धिक्कारते। क्या मिला उसे इतनी पढ़ाई करके। ऐसे में रोहित अपनी खाली गिलास-सी जिन्दगी, किसी कबाड़ी की दुकान पर बेचने के सिवा क्या करता? रोहित की उदासी कतरनों-सी उसके जीवन में बिखर गयी। ऐसे में रहमत चचा ने उसे जीने का सबक सिखाया। उनकी मोटर क्लीनिक, रोहित के घर के बगल में ही थी। रोहित ने उन्हीं से ड्राइवरी सीखी। उन्हीं की बदौलत आज वह खन्ना साहब का निजी ड्राइवर है।

विचारों के मन्थन में पता ही नहीं चला। गाड़ी अब तक कार्यालय तक पहुँच चुकी थी। खन्ना साहब ने गाड़ी से उतरते हुए रोहित से कहा, "तुम जाकर देखो नीरा कहां है, उसे घर छोड़कर आओ।"

"जी साहब!" रोहित का मन भी आरक्षण विरोधी लोगों की जमात में शामिल था। वह तो सरकार की इस नीति को वोट बटोरने की राजनीति कहेगा। आरक्षण की भारी सुविधा देकर, उन्हें अपनी कुर्सी सलामत रखनी है न। रोहित के चेहरे पर घृणा की झुर्रियां पारदर्शी हो आयीं।

इतने में रोहित के कानों में नारों की आवाज़ सुनाई पड़ी। उसने गेट के पास गाड़ी पार्क कर दी। और गेट के भीतर प्रवेश कर गया। मंच पर रवि विशाल छात्र-शक्ति को सम्बोधित कर रहा था। "दोस्तो! शासन को हमारे भविष्य की चिन्ता नहीं। हम छात्र-आन्दोलन और तीव्र करेंगे। पीछे नही हटेंगे। सभी मित्रों से आन्दोलन को सफल बनाने का आह्वान है। एक बात विशेष है। हम तोड़-फोड़ नहीं करेंगे। राष्ट्र की सम्पत्ति को नुकसान नहीं पहुंचाएंगे।"

तभी एक छात्र उठकर बोला, "ओय हम तेरी तरह गांधीवादी नहीं। हमें भी आता है अपना हक लेना।" एक हुंकार के साथ पत्थरों की बौछार। पुलिस ने लाठी चार्ज और हवाई फायर किया। आंसू गैस छोड़ी। लाठी चार्ज से कई छात्र घायल हो गए।

रोहित भागकर नीरा को देखने लगा। नीरा का हाथ लगभग खींचता हुआ बोला, "चलिए, साहब ने घर जाने को कहा है।"

"नहीं रोहित, तुम देख रहे हो, छात्रों को इस हाल में छोड़कर हम कैसे जा सकते हैं।"

तभी पुलिस ने रवि, नीरा सहित अनेक छात्रों को बन्दी बना लिया। छात्रों में असन्तोष और उनके अभिभावकों में चिन्ता व्याप गई।

कुछ समय बाद पैरोल पर रवि नीरा और छात्रों को रिहा कर दिया गया।

रवि जेल से सीधा घर पहुंचा। बाबू जी गुस्से में भरे बैठे थे। रवि को देखते ही चिल्लाकर बोले, "आ गए साहबज़ादे। खूब खानदान का नाम रोशन करो। जेल जाओ, चोरी करो।"

"यह चोरी नहीं है बाबूजी। यह तो अपने हक़ की लड़ाई है।"

"लड़ाई है तो लड़ो। हम सबको गोली मार दो।"

"कैसी बातें करते हैं बाबूजी! पिछले पच्चीस सालों में किरिच, किरिच होकर ज़िन्दगी जीते रहे हैं हम। मुनियां की डोली दहेज की मोटी रकम न जुटा पाने के कारण अभी तक नहीं उठी। अब पढ़-लिखकर भी यदि मैं कोई अच्छी नौकरी नहीं पा सका तो मेरे सारे सपने ताख पर रखे रह जायेंगे। बाबू जी, यह लड़ाई तो पूरे छात्र वर्ग की है। हम कैसे अपना हक छोड़ दें।"

बाबूजी बेटे की बात को मन-ही-मन बूझते हैं। बोले, "अभी तो जिम्मेदारी हमारी है बेटा! तुम मन लगाकर पढ़ाई करो।"

उधर अम्मा ने भी जोड़ा, "तुम पढ़ने में तेज़ हो। तुम्हें तो नौकरी मिल ही जाएगी।"

रवि खीझकर बोला, "आरक्षण हमारे अकेले का तो प्रश्न नहीं है न अम्मा?"

मुनियां पास बैठी सब कुछ सुन रही थी, भइया से बोली, "पहले खाना खा लो भइया।"

"हमें भूख नहीं है।" रवि एक गिलास पानी पीकर खटिया पर जा लेटा। उसे छात्रों के चेहरे याद आते रहे। गोलियां, लाठियां, पत्थरों की बौछार। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसका ध्यान पास की खाट पर सोये, मुनियां, बबलू और अम्मा पर गयी। बाबूजी का, उम्र की ढलान पर

फिसलता चेहरा। मां का झुर्रियों को आमंत्रण देता जिस्म, मुनियां का चढ़ता यौवन, बबलू की मासूमियत, रवि को उसके बड़ा बेटा होने का ऐलान करा गये। रवि का कर्तव्यों के प्रति पलायन, उसे भटकाव भरी जिन्दगी दे रहा था। धीरे से रवि ने बबलू के मुलायम गालों को छुआ। उसने मन-ही-मन सोचा, 'इस घर की रेतीली जमीन को धानी दूब में बदल दूंगा।' रवि ने चादर का एक कोना खींचकर मुंह ढाप लिया।

सुबह अखबार के हेड लाइंस को पढ़ते ही उसका हृदय कांप उठा। उसकी जवान धमनियों में रक्त-प्रवाह तीव्र हो गया।

उसका अन्तर उसे धिक्कारता रहा। इसी संकुचित विचारों से प्रसन्न होकर छात्रों ने उसे अपना नेता चुना था क्या ? वह स्वयं को परिवार को सुख की सीमा में बांधने का प्रयत्न कर रहा है। नहीं, वह अब और विश्वासघात नहीं करेगा।

रवि चाय को प्लेट में उडेलकर जल्दी-जल्दी पीता जा रहा था। साथ ही कमीज के बटन बन्द करता जा रहा था। मां चिल्लाती रही, 'रवि नाश्ता करता जा' परन्तु वह तेज़ कदमों से बाहर के दरवाज़े से निकल गया।

विद्यालय परिसर में पहुंचते ही, सभी छात्र रवि के करीब आ गये। कल के कार्यक्रम की रूप-रेखा बनाई गई। इतने में सुरेश और उसके साथी भी आ गये।

"फूंक देंगे मंडल कमीशन, जला लेंगे स्वयं को।"

रवि ने समझाया, "हम तुम्हारे वहशीपन से इत्तफाक नहीं रखते।"

"मत रखो। हम तो वही करेंगे जो हमें उचित लगता है।" सुरेश पैर पटकता हुआ, अपने साथियों के साथ निकल गया।

जिलाधीश दामोदरन के मुख पर चिन्ता की रेखाएं व्याप्त थीं। उन्होंने फोन का रिसीवर उठाकर हाईकमान को वर्तमान स्थिति का ब्यौरा दिया।

उधर से आवाज आई, "हम अभी इस मुद्दे पर समझौता किसी भी कीमत पर नहीं कर सकते। कार्यवाही मजबूती से की जाए।"

काफी देर तक बात चलती रही। हारकर दामोदरन ने रिसीवर नीचे रख दिया। उनका मन पसीज उठा। मन-ही-मन सोचते रहे, "यह कमीशन

पिछले 10 वर्षों से रद्दी की टोकरी में पड़ा रहा। आज बिना सलाह-मशविरे के शीघ्रता से लागू कर दिया गया।

दामोदरन ने अफ़सरों की एक बैठक बुलवाई। उन्हें कार्यभार सौंप दिया गया। कार्य में पूरी स्फूर्ति और निष्ठा बरती जाए, ऐसा निर्देश दामोदरन ने अफसरों को दे दिया।

घर पहुंचते ही पत्नी सुधा ने पूछा, "तबीयत तो ठीक है न? आप बहुत सुस्त लग रहे हैं।"

"ठीक हूं सुधा। मुझे अभी जाना है।"

खाने की टेबल की तरफ मुड़ते हुए दामोदरन बोले, "सारा शहर अशान्त है सुधा। रात खाने पर मेरा इन्तज़ार मत करना।" तौलिये से हाथ पोंछते हुए वह बाहर चले गये।

कार्यालय में सभी अफसर मौजूद थे। केवल ए० डी० एम० अरुण नहीं थे। उनका स्तीफा देखकर दामोदर न बोले, "यह सरकार विरोधी रवैया है। हम तो सरकार के मुलाज़िम हैं। हमें तो वही करना है। आप लोग पूरी समर्थता और सतर्कता से अपना कार्य करें।"

आरक्षण समर्थकों का अगुआ, धुआंधार आरक्षण की उपयोगिता समझा रहा था, "क्या आप दलित वर्ग को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना नहीं चाहते? क्या आप सदा ही उन्हें कमजोर और समाज में निम्नस्तर का जीवन जीने के लिए बाध्य करते रहेंगे? हमारी वर्तमान सरकार ने भी समाजवाद के वर्षों पुराने सपने को साकार बनाने का प्रयत्न किया है। समाजवाद का झूठा नारा लगाने से वह आसमान से टूटकर तो आएगा नहीं। हमें उसके लिए प्रयत्न भी करना होगा।"

भीड़ ने जिन्दाबाद के नारे लगाए।

प्रोफेसर धर्मपाल और प्रोफेसर सादिक पान की दुकान पर खड़े भाषण का आनन्द ले रहे थे। धर्मपाल पान की गिलौरी मुंह में डालते हुए बोले, "तुमने सुना सादिक, आज के अखबार में, जिले के एक शहर में चालीस सब इन्स्पेक्टर एक ही जाति के भर दिए गये। क्या यह भाई-भतीजावाद नहीं? एक तरफ आरक्षण का भारी-भरकम कोटा। कहां जाएंगे हमारे-

तुम्हारे बच्चे ?"

मुंह से पान की पीक थूकते हुए सादिक साहब बोले, "अमा पहले भी खा रहे थे धक्के, अब और ज्यादा खायेंगे।" वह हो-होऽऽऽ करके हंस पड़े।

धर्मपाल ने टोका, "भई, यह भी कोई हंसी में उड़ाने की बात है? अगर इन्हें समाज की मुख्य-धारा से ही जोड़ना है तो सर्वप्रथम शिक्षा घर-घर पहुंचनी चाहिए। यदि साक्षरता नहीं होगी तो आरक्षण का लाभ भी भला इन्हें कहां मिलेगा। वह तो उन थोड़े से वर्ग को ही मिलेगा। जिन्हें मिलता आ रहा है।"

"बात सोलहों आने सच है भाई। खैर! अब घर चलो।"

दोनों मित्र अपने घर की ओर बढ़ चले। रास्ते में कनपटियों को चीरता हुआ, छात्रों का प्रतिक्रियावादी नारा सुनाई पड़ा।

देखते-ही-देखते छात्रों का विशाल समूह जिलाधिकारी के कार्यालय पर टिड्डी-दल की तरह छा गया। इस समूह में अरुण भी शामिल थे। छात्रों के नारे आकाश को चीरते हुए हवा में सनसनाहट पैदा कर रहे थे। छात्रों की भीड़ को फांदता हुआ सुरेश का दल निर्दयता से पत्थरों को हवा में उछाल रहा था! कार्यालय के शीशे चूर-चूर हो गये। वाहनों को आग लगा दी। बिजली के तार काट डाले, खम्भे उखाड़ दिए। आस-पास के ठेले वालों के ठेले उलट दिए। रवि चीख पड़ा, सुरेश बन्द करो यह देश-द्रोहिता।"

"ओय! परे हट। हमारी धृतराष्ट्री सरकार क्या तुम्हारे मिमियाने से, मौन जुलूस और अनशन से मंडल कमीशन, पारित होने से रोक लगा देगी? कतई नहीं।"

पुलिस ने शीघ्रता से छात्रों पर अपनी शक्ति का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। गोलियों की बौछार।

एक गोली सनसनाती हुई, राकेश के सीने में लगी।

रवि दौड़कर उसे उठाने चला। एक गोली रवि के बायें हाथ में लगी।

नीरा, अरुण, राकेश और रवि को लेकर एम्बुलेन्स से अस्पताल पहुंचे।

राकेश की हालत गम्भीर है।

उसकी मां कलपती और संतप्त अस्पताल पहुंची।

डॉ० सचिन ने बताया, "आप लोग पेशेण्ट से मिल सकते हैं।"

राकेश अन्तिम सांसें गिन रहा था, बोला, "तुम्हें मेरी सौगन्ध है रवि, हारना मत। हमें अपने हक की लड़ाई लड़नी है। मुझ जैसे कितने ही राकेश की अन्तिम सांसों में हमारी जीत छुपी है।"

अरुण ने रवि का दाहिना हाथ हवा में उठाते हुए कहा, "मां भवानी की सौगंध मेरे दोस्त ! तुम्हारी यह कुरबानी हम खाली नहीं जाने देंगे।"

राकेश ने आंखें सदा के लिए मूंद लीं। पास बिलखती मां ने भी बेटे की चिता पर दम तोड़ दिया।

राकेश की अर्थी, फूलों से लादकर शहर भर में घुमाई गई।

नीरा घर पहुंची—बेहद उदास, बुझी हुई। सामने सोफ़े पर पापा को बैठा देख बिफर उठी, "आप यहां ? क्या गोली का निशाना बनाने के लिए आप मुझे ढूंढ़ रहे हैं ? लीजिए, तानिए बन्दूक मेरी तरफ। भून दीजिए मुझे गोलियों से।"

खन्ना साहब विचलित होते हुए बोले, "नहीं बेटे, ऐसा मत कहो। मेरा तबादला दिल्ली हो गया है। चलने की तैयारी करो, नीरा बेटे।"

"नहीं, अभी कैसे जा सकते हैं आप पापा ? अभी तो आपको रोज़ एक राकेश को मरवाना है।"

"ऐसा नहीं है मेरी बच्ची। मैं तो एक सरकारी मुलाज़िम हूं।"

खन्ना साहब की जिन्दगी में पूर्णिमा की चांदनी कभी नसीब नहीं हुई। नीरा को मात्र दो वर्षों का छोड़कर रत्ना परलोक सिधार गई। कतरनों के बीच झांकती चांदनी को नीरा के रूप में पाया था उन्होंने। आज वक्त के हाशिए पर उगी यह जंगली घास-सी जिन्दगी उनके अकेलेपन पर मुखौटा ही थी।

खन्ना साहब के नेत्रों से झांकती बारीक पनियल रेखा, नीरा के दुपट्टे तक पहुंच गई।

नीरा ने पापा का ध्यान बंटाते हुए कहा, "पापा, रवि के बाबू जी को पैरेलिसिस का अटैक हो गया है। आप चलेंगे उनसे मिलने ? वह बहुत खुश होंगे।"

"जरूर चलेंगे बेटे, आज ही।"

खन्ना साहब ने रवि के घर जाने की ढेर-सी हिम्मत बटोरी। वह अपने को दोषी पा रहे थे। उनके हाथों में गुलदस्ता था। नयनों में गुलाब की पंखड़ियों से चुराई गई शबनम की नर्म बूंदें।

वह सरलता से खन्ना साहब के पास बैठ गये। उन्हें धैर्य बंधाते रहे। रवि के कन्धों पर हाथ रखते हुए बोले, "घबराना नहीं, रवि! मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।" अनुमोदनस्वरूप नीरा के नेत्रों ने मूक स्वीकृति दी। रवि ने धीरे से 'जी' कहा।

खन्ना साहब के तबादले की बात सुनकर ज़रा भी विचलित नहीं हुआ रवि। उसे लगा नीरा ने नहीं छोड़ा उसका साथ, वह स्वयं ही हारता जा रहा है। अब वह नौकरी करेगा। बाबू जी की बीमारी, बबलू का भविष्य, मुनिया का ब्याह, मां की गहरी उदास सांसें—सब कुछ उसे ही तो सवारना है।

नौकरी की तलाश में वह एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय भटकता रहा। नौकरी वृक्ष पर लगा फल तो नहीं था, जिसे रवि तोड़कर रख लेता। हारकर उसने बाबू जी की क्लर्की संभाल ली।

आज कार्यालय में पहुंचते ही सभी बाबू जी की बीमारी के बारे में पूछने लगे। किस-किस को वह एक ही गढ़ा हुआ जुमला सुनाता।

बाबू जी को इलाज के लिए दिल्ली ले जाना होगा। ढेर-सा पैसा लगेगा।

उसे लगा वह स्वयं ही पंगु होकर बाबू जी की कुर्सी पर बैठ गया है।

आफिस से लौटने पर मां ने एक लिफाफा थमाया।

लिफाफा खोलते ही आशा की हल्की किरण से रवि का चेहरा चमक उठा।

"अम्मा, मेरठ एक इण्टरव्यू में जाना है।"

"अच्छा, बेटा।"

बाबू जी के अनबोले शब्द उनकी आंखों की झील में तैर गये। उन्हें लगा, छोटा-सा जुगनू उनके सिरहाने आकर बैठ गया है।

रातभर रवि सोचता रहा। नौकरी मिल गयी तो बाबू जी को इलाज के लिए दिल्ली ले जायेगा। मुनिया का रिश्ता पक्का कर देगा।

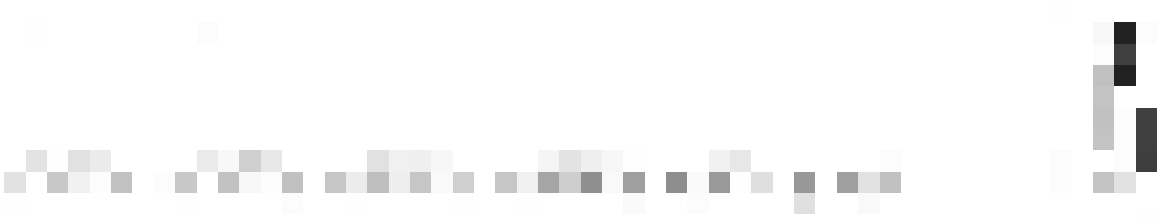

अम्मा के पैबन्द लगे जम्पर को छिपाकर रख देगा।

सुबह उठकर रवि जाने की तैयारी में लग गया। अम्मा की हिदायतें नोट कर लीं। बाबू जी, अम्मा के पैर छूकर रिक्शे पर आ बैठा।

रवि स्टेशन समय से पहुंच गया। गाड़ी पांच घण्टे लेट थी। वह रेलवे बुक-स्टाल पर खड़ा हो गया। पत्रिकाओं के पन्ने पलटने लगा। वहां भी रवि का मन नहीं लगा। वह आकर एक कोने की बेंच पर बैठकर 'वार एण्ड पीस' पढ़ने लगा।

कुछ समय के बाद एक भारी आवाज़ ने उसकी तन्द्रा भंग की।

"अरे यार, रवि माथुर हो न तुम ! एम आई राइट ?" आगन्तुक ने अपना हाथ आगे बढ़ाया।

रवि ने कहा, "मैंने आपको पहचाना नहीं !"

फिर देर तक दिमाग पर ज़ोर डालता रहा।

"तुम सुबोध हो न ?"

"हां, यार, तूने मुझे पहचाना ही नहीं।"

दोनों मित्र गले मिले। "यार, तुझे पहचानूं भी तो कैसे ? बचपन में हाई स्कूल तक तो तू स्लेटी कमीज़-नेकर और गेरुआ रंग के जूतों में स्कूल आया करता था। आज तो तू बिलकुल सेठ लग रहा है।"

"अच्छा, तुझे भी सेठ बनने के सारे तरीके बता दूंगा।"

ट्रेन आ चुकी थी। दोनों मित्र डिब्बे में चढ़ गये। बातों का सिलसिला सुबोध ने ही छेड़ा—

"कहां जा रहा है तू ?"

"एक इण्टरव्यू है मेरठ में।"

"ठीक है, मैं कल गाजियाबाद से लौटूंगा।"

पैंट की जेब से अपना विजिटिंग कार्ड निकालकर रवि की तरफ बढ़ाता हुआ बोला, "इस पते पर मुझसे मिलना।"

रवि ने कहा, "ठीक है।" और कार्ड अपनी कमीज की ऊपरी जेब में रख लिया।

मेरठ स्टेशन आ गया था। रवि अपनी अटैची उठाता हुआ बोला—"ओ० के०, सुबोध ! मिलते हैं फिर।"

रवि गाड़ी से उतरकर लम्बे डग भरता स्टेशन से बाहर आ गया। बेगम पुल जाने के लिए रिक्शा ले लिया।

रवि का मन शंकाओं का आगार बना हुआ था। साक्षात्कार कार्यालय के गेट पर पहुंचकर उसका मन कुछ शान्त हुआ।

वहां बहुत से प्रत्याशी बेंचों पर बैठे दिखाई दिये।

रवि भी एक तरफ बैठकर अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगा।

लगभग दो घंटे बाद उसका नम्बर आया। सामने के दरवाज़े में लगे शीशे में उसने अपने बाल संवारे। उसकी पेशानी पर चुहचुहाती पसीने की बूंदें उसकी व्यग्रता व्यक्त कर रही थीं। रवि ने रूमाल से अपना मुंह पोंछा और कमरे में प्रवेश कर गया।

महोदय ने उसे बैठने का संकेत किया।

रवि ने कुर्सी पर बैठते हुए अपनी जेब से एक कागज निकाला। महोदय की ओर बढ़ाते हुए हलका-सा उठते हुए मुसकराया।

महोदय ने परचे के ऊपर भेजने वाले का नाम पढ़ा। क्षण-भर को आत्मीयता उनके चेहरे पर उतराई।

"अच्छा प्रोफेसर धर्मपाल ! कैसे हैं वह ? मेरा नमस्ते उन्हें देना।"

तभी टेलीफोन की घंटी घनघना उठी। महोदय ने रिसीवर उठाकर 'हैलो' कहा।

उधर से आती आवाज़ सुनते ही महोदय घबराकर कुर्सी से झटककर खड़े हो गये।

"सर···यस सर ! हो जायेगा···डोन्ट वरी, सर। हां, सर, नो प्रॉब्लम। यस, ओनली वन सीट, सर ! कन्फर्म, सर ! सर, और कोई सेवा ?"

रवि की हथेलियों की तपन बर्फ में बदलने लगी। वह धीरे से अपनी फाइल उठाकर दरवाज़े से बाहर आ गया।

रवि के खून का आक्रोश उसके भीतर लावा बनकर फूट रहा था। कान की नसें उभरकर लाल हो गईं। उसका जी हुआ, दोनों हाथों से अपने बाल नोंच डाले। रवि अपनी आंखों के सामने घोर अन्धकार में डूबता जा रहा था। उसका मन बर्फ की नदी में लेटकर भीतर के उबलते आक्रोश को शान्त करने का हो रहा था। परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। सड़क

के किनारे नगरपालिका के नल से गिरते हुए पानी को देख रवि उस ओर मुड़ गया। हाथ-मुंह धोया। चुल्लू भरकर पानी पिया, जब तक उसके उदर की क्षुधा शान्त नहीं हो गयी।

जीवन से हताश और ठगा हुआ रवि बिजली के खम्भे के नीचे मुंह लटकाए खड़ा था। तभी हवा में हाथ हिलाता सुबोध उसे दिखायी पड़ा।

एक मारुति रवि के पास आकर रुकी। सुबोध ने कहा, "आ, बैठ, रवि! कैसा रहा इण्टरव्यू?"

"मेरा सेलेक्शन नहीं हुआ, सुबोध!"

"यह तो ठीक नहीं हुआ, तेरे-जैसे ब्रिलियेण्ट को नौकरी नहीं मिली। वेरी सॉरी।"

"मेरा दुर्भाग्य है, सुबोध! बाबू जी पक्षाघात से पीड़ित हैं, इसीलिए मेरा नौकरी करना बेहद जरूरी है।"

'घबराओ मत, दोस्त! हमारे बिजनेस-पार्टनर बन जाओ। फिर जिन्दगी जीने का तरीका देखो।"

रवि ने देखा, कार की पिछली सीट पर एक गौरवर्णा युवती बैठी हुई है। उसकी बगल में एक नीग्रो युवक है। युवक सिगरेट के कश का धुआं युवती के मुंह पर फेंकता। युवती मुसकराती। रह-रहकर युवक युवती को स्पर्श करता और उसके समीप सरक जाता।

रवि को यह सब बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। इतने बड़े शहर में केवल सुबोध ही तो अपना है। उसे नीरा का ख़याल आया।

"सुबोध, यहां से दिल्ली तो बहुत करीब है न?"

"हां। क्यों, तुम जाना चाहते हो?"

"सोचता तो हूं।"

मारुति मार्बल पर भागती गेंद-सी होटल ओबराय पहुंची। सुबोध ने दरवाज़ा खोला। युवक और युवती बाहर आये। युवती के लहराते घने केश और नशे से भरी आंखें उसे और सौन्दर्य प्रदान कर रहे थे। सुबोध ने उनसे कहा, "प्लीज़, प्रोसीड, वी आर जस्ट कमिंग।"

नीग्रो युवक ने युवती को अपनी बांहों के घेरे में लेते हुए कदम आगे

बढ़ा दिए।

सुबोध ने रवि से कहा, "रवि, यह मेरे क्लाएंट्स हैं। अमरीका से आये हैं। इनके साथ हमें कर्टसी से पेश आना पड़ता है। तुम समझ रहे हो न ? आओ, उनके पास चलते हैं।"

रवि ने पूछा, "तुम्हारा क्या बिजनेस है, सुबोध ?"

"यही एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट का। इस बिजनेस में तुम्हारी हिस्सेदारी तुम्हारे सारे दर्द भुला देगी।"

दोनों मित्र कमरे तक पहुंच चुके थे। युवती ने बैग से कुछ पैकेट निकालकर उनका मुआयना किया। युवक ने सुबोध के हाथ में कुछ दिया। रवि को समझते देर नहीं लगी कि ये दोनों किसी अवैध धन्धे में लिप्त हैं। रवि को कमरे की घुटन से भाग खड़े होने की इच्छा हो रही थी, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। दोनों थोड़ी देर बाद चले गये।

सुबोध दोनों को छोड़कर आने के बाद रवि से बोला, "जानते हो, मित्र, जब आदमी बहुत हताश होता है तो उसे कमज़ोर सहारा भी अच्छा लगता है। मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ था, रवि ! मुझे वे दिन आज भी याद हैं जब मेरी दो साल की बच्ची ने डॉक्टरी सुविधा से वंचित रहने के कारण प्राण त्याग दिये। खैर, छोड़ो ! हां, तुम दिल्ली जाना चाहते थे न ?"

"नहीं, सुबोध ! मैं चला जाऊंगा।"

"दोस्तों से इतना परायापन अच्छा नहीं, रवि ! चलो, तैयार हो लो। खाना खाकर चलते हैं।"

रास्ते में सुबोध ने उससे बताया, "इस धन्धे से सभी कुछ पाया जा सकता है, रवि ! नौकरी के लिए जूतों के तले घिसते बीत जाते हैं। नौकरी सोर्स वालों को मिल जाती है। तुम्हारी स्थिति समझते हुए ही मैंने यह बात तुमसे कही है।"

"मुझे सोचने का मौका दो।"

"हां-हां, जरूर। नो हरी। तुम्हारे पास नीरा का पता तो होगा ?"

"हां, है।" रवि ने नोटबुक निकालकर सुबोध की ओर बढ़ाया।

कुछ ही देर में मारुति खन्ना साहब के बंगले के गेट पर थी। अर्दली

ने पूछा, "किससे मिलना है ?"

रवि ने एक पेपर पर लिख दिया। अर्दली भीतर गया। कुछ ही देर में वापस आकर बोला, "आप लोग बैठिये। अभी आ रही हैं बिटिया।"

सुबोध रवि को ड्रॉप करके चला गया।

रवि को देखकर नीरा प्रसन्नता से भर उठी। बहुत सारे प्रश्न एक साथ कर डाले—बाबू जी अब कैसे हैं ? अम्मा, मुनिया, बबलू—सब की कुशलता पूछ ली। यहां कैसे आना हुआ ? तुमने मेरे पत्रों का जवाब क्यों नहीं दिया ? क्या हाल बना रखा है अपना ?

रवि के मुख पर कुछ चिन्ता, कुछ सुख के भाव झलके। "मेरठ एक इण्टरव्यू में आया था, लेकिन सेलेक्शन नहीं हुआ। वह सीट किसी उच्च पदाधिकारी के सुपुत्र के लिए सुरक्षित थी। नौकरी मिलना आसान नहीं, नीरा। सोचता हूं बिजनेस कर लूं।"

"तुम्हारे-जैसा आदर्शवादी व्यक्ति और बिजनेस ?"

"कोशिश करनी होगी, नीरा ! वह रवि समय के थपेड़ों के साथ ही मेरे भीतर दफन होता जा रहा है।"

"ऐसा नहीं कहते, रवि ! सत्य तो अनश्वर है, अविभाज्य, शाश्वत है।"

"रवि, तुम तैयार हो लो, बाहर चलते हैं। तुम्हें अपनी एक सहेली से मिलवाऊंगी। उसके पापा की सीमेन्ट की फैक्टरी है। उन्हें एक ईमानदार मैनेजर चाहिए। वह कुछ दिनों के लिए जापान जा रहे हैं। मैं सोचती हूं तुमसे अधिक ईमानदार व्यक्ति उन्हें नहीं मिलेगा।"

रवि के होंठों पर हल्की मुसकान बिखर गई। उसने पूछा, "पापा कैसे हैं, नीरा ?"

"अच्छे हैं, रवि ! शिमला टूर पर गये हैं। परसों आयेंगे। अच्छा, अब विभा के यहां चलते हैं।"

रास्ते में अपार भीड़ से रास्ता जाम था। "जानते हो, रवि, यह आरक्षण-विरोधी छात्र आन्दोलन है।"

"नीरा, आरक्षण के संत्रास के ज्वालामुखी से हमारा जीवन झुलस गया है। मैंने यह साल बरबाद कर लिया। नौकरी अभी तक हासिल नहीं

हुई । मेरी ही तरह न जाने कितने युवा हताश होकर, गुमराही के चौराहों पर स्वयं को नीलाम कर देते हैं।"

"नहीं, रवि, यह भटकाव का रास्ता अपनी कुण्ठा का प्रतीक है। जीवन के प्रति इतना ऋणात्मक रवैया अच्छा नहीं। तुम्हें तो मालूम है, रवि, हर रात के बाद सवेरा होता ही है।"

"परन्तु नीरा, कई जिन्दगियां ऐसी भी हैं जहां नियमों के तटबन्ध टूट जाते हैं। वहां रात के बाद भी रात ही आती है। सत्य तो शिव भी हैं। उसे झेलना कठिन तो होता ही है। भाषण देना, नारे लगाना यथार्थ की दहलीज़ पर बौने लगते हैं, नीरा !"

एकाएक दोनों ने चुप्पी साध ली।

जुलूस आगे बढ़ता आ रहा है। नीरा की मुट्ठियां भिंच गईं। एकाएक रवि को झकझोरते हुए बोली, "वह देखो रवि, जुलूस के आगे तुम्हारे हाथ में मशाल है। इस मशाल की रोशनी में अपार छात्र-शक्ति आगे बढ़ रही है। तुम्हारे पीछे मैं हूं। बैनर पकड़े हुए तमाम लड़कियां हैं साथ। रवि, आन्दोलन अपने लक्ष्य की प्राप्ति में जीवित रहते हैं। अधिकार के पक्ष में पीढ़ीगत चलते रहते हैं। हम हारे नहीं, रवि ! हमारी जीत मशाल की चमकदार लौ में कायम है।"

रवि के मस्तक पर पलाशी रश्मियां विहंस उठीं। नीरा और रवि धीरे-धीरे कार से उतरकर छात्रों की भीड़ में शामिल हो गये।

लाल पाटों वाली साड़ी

आषाढ़ के बादल घुमड़-घुमड़कर शोर मचा रहे थे। सुबह से लगातार बरसने के बाद दिन के तीसरे पहर बारिश थम गयी। बरसात की उमस से चिपचिपाते पसीनों भरे दिन। रधिया काम निबटाकर घर आ गयी। खाना बनाकर बच्चों को खिलाया। घर के सारे काम निबटा लिये। वह रात का खाना लिये रामधन का इन्तजार करती रही। रामधन रोज की तरह आज फिर खूब पीकर आया। अनायास ही रधिया से उलझ गया। खाट पर बैठी रधिया को एक भद्दी-सी गाली दी। रधिया बिफर पड़ी।

"एक तो इतनी देर से खाना लिये बैठी हूं भूखी-प्यासी और तुम मुझे गाली दे रहे हो!"

इतना सुनते ही रामधन ने उसे खाट सहित उलट दिया। वह खाट सड़क के नाले पर डालकर सो गया। उसके खर्राटे दर्द से कराहती रधिया के कानों में गर्म सलाखों की चोट-से लग रहे थे। मुंह के बल ज़मीन पर गिरने से रधिया की पसलियां पिरा रही थीं। रात रोते बीती। पिछले पहर उसकी आंख लग गयीं। वह हकबकाकर उठी। देखा, सूरज चढ़ आया है। रधिया की पसलियों का दर्द अब भी दरक रहा था। वह हिम्मत बांधकर झट से उठी। गंगो-गौरा को उठाया। घर का कुछ काम जल्दी-जल्दी संभाला। एक लोटा पानी रामधन की खटिया के पास रख आयी। गंगो को सहेज आयी, "पानी का मटका भर लीजो और बप्पा को नहारी दे दीजो।"

रधिया रोज इसी तरह गंगो को बताती है। गंगो बच्ची ही तो है, कुल दस साल की। कहीं भूल गयी तो रामधन सारा घर सिर पर उठा लेगा। गौरा ने सितवा को उठाया। नहारी कराया। सितवा बाहर गुल्ली-डंडा खेलने चला गया। दोनों बच्चियां समझदारी से रधिया के आने तक बहुत-सा काम कर लेंगी। गंगो खाना बना लेगी। गौरा सफ़ाई और पानी भर लायेगी। दोनों बहनें उपले पाथेंगी। गौरा चूनी और चने की भूसी की दौरी मोती के सामने रख आयी। वह मोती से बोली, "ऐ मोती, जल्दी से बड़ी हो जा और दूध दे। हम, दीदी और सितवा जी भरकर दूध पीयेंगे।"

रामधन जाग गया था। उसने रधिया को आवाज़ लगायी। गंगो बोली, "बप्पा, अम्मा काम पर गयी।"

"हरामज़ादी सुबह-सुबह झटककर साहबों के बंगले पर चली जाती है।" एक लोटा पानी डकारकर वह खेत चला गया।

रधिया काम पर खन्ना साहब के घर सबसे पहले जाती है। वहां उनका रसोइया श्रीधर खूब बढ़िया चाय पिलाता है उसे। रधिया के आगे बर्तनों का ढेर था। उसकी पसलियां अब भी टूट रही थीं। वह बर्तन मांजने बैठ गई। रसोइया उसके पास आकर बोला, "क्या बात है रधिया, आज तू बहुत गिरी-पड़ी लग रही है? कल फिर पिटी क्या?"

रधिया चुप रह गयी। वह फिर बोला, "बड़ा राक्षस है रे तेरा मरद। मैं तो कभी अपनी घरवाली को नहीं मारूंगा। आज तो अभी तक सब लोग सो रहे हैं। रात साहब दौरे पर से देर में लौटे। मेम साहब भी बहुत देर में सोईं।" कुछ आहट पर श्रीधर ने समझा, मेम साहब जाग गई हैं। वह चाय बनाने लगा।

रधिया बर्तन धोकर उन्हें सजाने लगी। श्रीधर ने कहा, "रधिया, कल मेमसाहब की किटी पार्टी है। सुबह और जल्दी आना।"

रधिया बोली, "आज तनिक देर तक आंख लग गई।"

श्रीधर बोला, "कोई बात नहीं।"

ईशा और जूही—डॉ० खन्ना की दो लड़कियां हैं। बड़ी ईशा लखनऊ

में मेडिकल में पढ़ रही है। आजकल छुट्टियों में आयी हुई है। छोटी जूही बी.एस-सी. में पढ़ रही है। दोनों बहनें विचारों में पूरब-पश्चिम हैं। ईशा शान्त, सरल, अल्पभाषिणी। जूही वाचाल, पश्चिमी आबोहवा की पोषिका। कल रात गये उसका ब्वॉय फ्रेण्ड उसे मोटर साइकिल से छोड़ गया। दोनों सिगरेट फूंक रहे थे। मिसेज़ खन्ना कल की किटी की तैयारी में लग गयीं और पकवानों की लिस्ट श्रीधर को समझा गयीं। मिसेज़ खन्ना लड़कियों के साथ बाजार चली गयीं। ईशा भी चली गयी। कॉलेज जाना था।

रधिया सफ़ाई का काम करके चली गयी। रधिया जब तक मिसेज़ गांगुली के घर आयी, नौ बज चुके थे। वह जानती है डांट बर्दाश्त करनी होगी। मिसेज़ गांगुली ने कहा, "कितनी देर कर दी, रधिया! तेरे इन्तज़ार में क्या खाना-पीना नहीं होगा!"

रधिया ने जबाव नहीं दिया। उसे पता है मेम साहब उसे ज्यादा मुंह नहीं लगाती। ज़रा भी जवाब देगी तो वह उसे निकाल देगी।

मिसेज़ गांगुली बोली, "रधिया, हमारी मिक्सी खराब हो गयी है। चने की दाल पीस दे।"

रधिया ने कहा, "मेम साहब, शाम को पीस दूंगी।"

मिसेज़ गांगुली बोली, "तेरी यही बात तो मुझे अच्छी नहीं लगती। तेरी लाल पाटो वाली साड़ी रखी है। तू इस तरह काम को नकारेगी तो कैसे काम चलेगा?"

"मैं शाम को जरूर पीस दूंगी, मेम साहब!"

"अच्छा, ज़रा जल्दी आना।"

रधिया जल्दी-जल्दी काम निबटाकर घर आ गयी। रामधन अभी नहीं आया था। बच्चों को खाना खिला दिया। रधिया ने झट से श्रीधर के लिए कटहल काट लिये। गंगो को बाजार भेजकर लहसुन, गरम मसाला मंगवाया। कटहल की तरकारी से भात रामधन बड़े चाव से खाता है। रधिया रामधन का इन्तज़ार करती रही। रामधन आज जल्दी आ गया। रधिया ने हाथ-मुंह धोने का पानी रखा। रामधन से पूछ बैठी, "आज इतनी जल्दी कैसे आ गये?"

"आज कुछ जी अच्छा नहीं है, रधिया। रिक्शा खींचने में सांस उखड़ रही थी। मैंने सोचा थोड़ा आराम करूँगा।" रामधन बोला, "कटहल की तरकारी बड़ी स्वादिष्ट बनाती है तू, रधिया !"

"थोड़ी और ले लो।" रामधन खाना खाकर लेटा तो सो गया।

रधिया को गांगुली मेम साहब के घर जल्दी जाना है। वह उठी। देखा, रामधन सो रहा है। चुपचाप चली गई। दो किलो दाल पीसते-पीसते रधिया के हाथ काठ हो गये। मेम साहब ने साड़ी लाकर दी। "देख, अच्छी है न ?"

"हां, मेम साहब ! बहुत अच्छी है।"

रधिया खुशी-खुशी घर आयी।

शाम का झुटपुटा अंधेरे में विलीन हो गया।

रामधन रिक्शा लेकर चला गया था। रधिया ने घर का काम सुलटाया। बच्चों को खिलाकर सुला दिया। रधिया ने हाथ-मुंह धोकर लाल पाटों वाली साड़ी पहनी। लाल ब्लाउज, बड़ी-सी लाल बिन्दी लगायी। आले में रखे टूटे शीशे के टुकड़े में अपना रूप देखा। रधिया अपने चेहरे का भोलापन और लावण्य देखकर लजा गई। लगता ही नहीं कि तीन बच्चों की अम्मा है।

रधिया सोचती रही—रामधन सारा दिन रिक्शा खींचता है। कितना कलेजा थक जाता होगा। वह दो चौके और लेगी। रामधन से कहेगी कि अब इतने घंटे तक गाड़ी न खींचे। कल तबीयत खराब बता रहा था। रधिया सोच रही है—रामधन से लड़ेगी नहीं। न ही उसकी मार का बुरा मानेगी। कल काम की छुट्टी कर देगी। रामधन के साथ सीताराम मन्दिर हो आयेगी।

रात के नौ बज गये। रधिया लेटी तो आंख लग गयी। रिक्शे की खड़खड़ाहट सुनकर उठ बैठी। दालान में से देखा, रामदीन दादा रिक्शा में रामधन को लादे आ रहे हैं। उसका माथा ठनका। वह झटक कर खटिया से उठी। "यह क्या, रामदीन दादा ?"

"भौजी, रामधनवा हमको छोड़कर चला गया।"

रधिया की आंखों से जलधार बहती रही। उसने अपने तन पर लपेटी लाल साड़ी फाड़ डाली। मुहल्ले की औरतों ने उसकी लाल चूड़ियां तोड़ दीं।

रधिया के तन पर लिपटी लाल पाटों वाली साड़ी रामधन की चिता से उठती लाल लपटों में परिवर्तित हो चुकी थी। उसके नेत्रों में संकल्प का अलाव जल उठा।

रधिया ने रामधन के रिक्शे की मूठ हथेलियों में भींच ली। दूसरे हाथ के बीच उसने गौरा, गंगो और सितवा को लपेटकर अपने वक्ष में समो लिया।

दंगाई

शहर के सुनसान अंधेरों में सन्नाटा बुनती हवाएं। चारों दिशाओं में फैले हुए पुलिस के जत्थे। रायफलों से लैस पी० ए० सी० के जवान अपनी-अपनी ड्यूटी पर तैनात। मरघटिया खामोशी को चीरती हुई जवानों के बूटों की ठप्प-ठप्प।

शहर में चार दिनों से कर्फ्यू है। लाउडस्पीकर से आवाज आ रही है—किसी भी व्यक्ति को संदिग्ध अवस्था में देखे जाने पर गोली मार दी जाएगी।

जसवन्त पहली बार शहर आया है। वह अजीब पेशोपेश में पड़ा हुआ है। यह कैसा शहर है! लगता है मरघट हो। हमारे तो गांव में भी इससे ज्यादा चहल-पहल है। सड़कें देखो, किसी बांझ स्त्री की कोख-सी लगती हैं। चिड़िया का पूत भी नहीं। जसवन्त मन-ही-मन बड़बड़ा रहा था—कहां आ गया, सोहना! जब से घर से आया है, कुछ भी हाल नहीं भेजा। चिन्ता के कारण मुझे शहर आना पड़ा। कितना मना किया था—शहर न जा। वहां आदमी नहीं रहते। भूल-भुलैया होता है शहर। लेकिन उसने एक न सुनी। उसकी ज़िद थी, शहर आकर कमाना चाहता था। जवान बेटा जब कन्धे तक हो जाए, उससे हुज्जत करना आसान नहीं होता। सोहना के शहर चले आने से हरविन्दर ने रो-रोकर आंखें लाल कर लीं। उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते उसकी आंखों के सामने सोहना की सूरत टुकटुकाती रहती। रोटी खाना हरविन्दर भूलती जा रही थी।

जसवन्त बुदबुदा रहा था—न ही उसने बलविन्दर के ब्याह वास्ते साहू से उधार लिया होता, न ही सोहना नौकरी वास्ते शहर आता, बलविन्दर के ब्याह की याद कर जसवन्त की आंखें नम हो गईं।

पिछले साल ही तो बलविन्दर का ब्याह रचाया था। मेरे पास तो दान-दहेज वास्ते फूटी कौड़ी भी न थी। साहू खीसें निपोरता बोला था, "घबराने की क्या बात है बादशाओ, तुम्हारी बेटी हमारी भी बेटी है। सारे गांव की बेटी है। तुसी जितना रुपया चाहिए, ले जाओ। पुत्तर की शादी शौक नाल करो।" निहाल हो गया था जसवन्ता। कितना भला आदमी है साहू, गरीबों का मसीहा। ऐन मौके पर यही तो हमारे काम आता है।

चश्मे के भीतर से झांकता साहू बहीखाता जसवन्त की ओर बढ़ाता बोला, "तुसी इधर अंगूठा मार दो जी।" बदले में साहू ने रोकड़ सहेज दी जसवन्त को। वह खुशी-खुशी घर आकर हरविन्दर से बोला, "ये ले, अब बलविन्दर की शादी की तैयारी में लग जा।"

बलविन्दर ब्याह दी गई। ससुराल जाते समय उसकी आंखों में भय था। हरविन्दर ने जसवन्त से कहा, "सोहना का भी ब्याह कर देंगे। प्यारी-सी बहू घर में लाएंगे। अपना बुढ़ापा कट जायेगा।" जसवन्त दालान में बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। सामने हरविन्दर मट्ठा बिलो रही थी। बोली, "हरी-हरी गेहूं की फसल कितनी जवान लग रही है। रब चाहेगा तो साहू का कर्जा भी चुक जाएगा और सोहना के ब्याह का खर्च भी।"

"हाँ, ठीक तेरी तरह—जब तू नवेली ब्याह कर आई थी, हरविन्दा।"

"हटो। इस उमर में कैसी ठिठोली करते हो जी!"

रात गये जसवन्त सोचता रहा। उसे खेती की हरियाली, साहू का कर्जा, कटाई का काम—सब बारी-बारी से लोरी देते रहे। जसवन्ता गाढ़ी नींद में सोया। पिछले पहर सियारों की हुआ-हू रोज से ज्यादा तेज थी। हरविन्दर ने करवट बदली, जसवन्त की तरफ देखा। वह सो रहा था। वह भी सो गई। सुबह उठते ही जब जसवन्ता बाहर जाने लगा, उसका कलेजा धक से रह गया। सारा खेत जलकर राख हो गया था। साहू के

आदमी खेत की नाप-जोख कर रहे थे।

"अरे भई, यह क्या कर रहे हो?"

साहू खीसें निपोरता हुआ गुर्राया, "अरे भई, तुम्हें याद नहीं तुम्हीं ने तो फसल मय खेत हमें बेची थी। अरे, बलविन्दर के व्याह के लिए। फसल तो जल गयी। अब जमीन तो जोखता लेने दो। चलो, परे हटो!"

सोहना का जवान खून उबाले लेने लगा।

"खबरदार, जो हमारी जमीन नापने की जुर्रत की!"

"अच्छा तो कल के छोकरे भी हमारे मुंह लगने लगे।"

साहू के एक इशारे पर लाठियां बरस पड़ीं। लहूलुहान सोहना को कन्धे पर उठाये जसवन्त घर आया। हरविन्दर ने छाती पीट ली। "हमें नहीं चाहिए जमीन। हम मजूरी करके पेट पाल लेंगे।" वह रोती-कलपती बेटे की सेवा में लग गई। जसवन्त ने सिर पीट लिया। साहू को गालियां दीं।

"गरीबों के साथ अमीरों का यह खेल बहुत पुराना है। वे तो हमारी हड्डियाँ तक निचोड़ लें। इनकी आलीशान कोठियाँ हमारे रक्त-मांस के गारे से ही तो बनती हैं। सिर छुपाने के लिए यह छप्पर तो है, हरविन्दर! हम हिम्मत नहीं छोड़ेंगे।"

सोहना ठीक हो रहा था। उसके दिल-दिमाग पर जमी बर्फ पिघलने लगी थी। उससे बूढ़े माँ-बाप का मजूरी करना देखा नहीं जाता था। उसने तय कर लिया, वह शहर जाएगा। बोझ ढोने का काम कर लेगा। सोहना की जिद के आगे हरविन्दर और जसवन्त की एक न चली।

"अच्छा, पुत्तर! जस्सो बुआ के घर चले जाना। वहीं रहना। उनसे सतश्री अकाल कहना।" हरविन्दर ने मिस्सी रोटी और मूली के साग की पोटली सोहना को थमा दी। उसने पुत्तर को कलेजे से लगा लिया। "हाल देते रहना, पुत्तर!"

जसन्वत उसे बस तक छोड़ आया।

सोहना शहर आ गया। इतनी रोशनी। रंग-बिरंगे लट्टू। मोटरगाड़ी। मीलों लम्बी चिकनी-चिकनी मक्खन-सी सड़कें। सोहना को पूछताछ के बाद जस्सो बुआ का घर मिल गया। बुआ पहले तो सोहना को पहचान

नहीं पाई।

सोहना ने बताया, "मैं रायपुरा गांव के जसवन्त का बेटा हूं।"

"अच्छ-अच्छा। आ, बैठ, पुत्तर। कुछ खा-पी।"

सोहना बुआ के पास ही झिलंगी खाट पर बैठ गया। दालान में पड़ी इस खाट पर बुआ की सारी गृहस्थी करीने से लगी थी।

एक कुर्सी पर दवाई के डिब्बे, गिलास, सुराही, कुछ फटे बदरंग होते सलवार-कुर्ते। खाट के नीचे रखी सुतली से बंधी चप्पलें, पैबन्द लगे सलवार-कुर्ते बुआ की खस्ता हालत के गवाह थे। बुआ ने झोले से निकालकर ताशे सोहना को थमाये। "यह ले, पानी पी ले।"

सामने की कोठरी से ठिगने कद की एक औरत निकली। उसके सीने पर कंगारू की तरह एक बच्ची चिपकी हुई थी। "यह संतो है, रामपाल की घरवाली। रामपाल ज्यादा करके ड्यूटी पर रहता है। छोटे-छोटे बच्चों में हैरान हो जाती है।"

सन्तो ने तिरछी आँखों से सोहना को देखा। सन्तो कुछ नहीं बोली। कोठरी के भीतर जाकर दरवाजा भेड़ लिया। सोहना को वहां रहना बेतुका लगा। यहां कोई मर्द नहीं। वह चला जाएगा। मगर अनजाने शहर में वह जाएगा कहां? रात उसने वहीं काटी। तड़के उसने बुआ से जाने की इच्छा जाहिर की।

"अरे पुत्तर, तू यहीं रह न! रामपाल के घर न रहने से डर-सा लगा रहता है।"

"काम की तलाश में जाता हूं, बुआ।"

"जा, पुत्तर! रब तेरी मदद करेगा। जरा सावधानी से, यह शहर है और तू गाँव दा बन्दा।"

सोहना बुआ के पैर छूकर निकल पड़ा। सारा दिन भटकता रहा। पर काम पेड़ पर लगे बेर तो नहीं। सब पूछते—पहले कहीं काम किया है क्या? तेरी गारंटी कौन लेवेगा?

शाम ढल चुकी थी। थका-हारा सोहना पीपल के वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर बैठ गया। देखते-देखते कई युवक वहां आ गये। सब विश्राम करने लगे। उसे छायादार पीपल अपने बूढ़े बाप की तरह लगा। सोहना

की आंख खुलने पर उसने अपने ही पास बैठे एक युवक को देखा। युवक बोला, "नये लगते हो। कहां काम करते हो?"

"कहीं नहीं। तलाश में हूं।"

"अच्छा, मेरे साथ चलो।"

जीतू के कहने पर सोहना को सेठ ने दस रुपये रोज पगार पर माल ढोने की गाड़ी खींचने के लिए लगा लिया। सारा दिन बोझ खींचता। शाम को उसकी हथेलियों पर दस रुपये हीरे की कनी-से लगते। बचे हुए रुपयों से सोहना ने बुआ के लिए जम्पर-सलवार खरीदा। थोड़े से पेड़े बच्चों के लिए लेकर सोहना बुआ के घर पहुंचा।

बुआ सोहना को देखकर प्रसन्नता और खीझ से बोली, "कहां रह गया था, सोहना? मैं तेरे लिए बहुत परेशान रही। यह शहर है पुत्तर, और तू ठहरा गाँव दा मुण्डा।"

सोहना ने कपड़ों का पैकेट बुआ को थमाते हुए कहा, "यह तुम्हारे लिए है, बुआ।"

बुआ की बूढ़ी हड्डियों ने पैकेट थाम लिया। "तू खूब कमावे-खर्चे, पुत्तर!"

बच्चों ने बड़े चाव से पेड़े खाये। उस दिन सन्तो ने सोहना के सामने भी दो रोटी लाकर रख दीं। सोहना ने घर की सोंधी रोटियाँ खायीं तो अम्मा याद आ गई। रात सोहना बुआ की खटिया के पास कोठरी की चौखट के एक तरफ चादर डालकर पड़ रहा। नींद के पहले झोंके में सोहना गहरी नींद सो गया। बीच रात में किसी के पैरों की आहट हुई, धप-धप। सोहना के कान खड़े हो गये। बुआ की नाक रेल के इंजिन की तरह भक-भक कर रही थी। कदमों की आवाज सुनते ही कोठरी का दरवाजा खुला। सन्तो का मुंह अंधेरे में नहीं दिखा, पर कुण्डी पर धरे हाथ सन्तो के ही थे। सोहना को यकीन हो गया था, यह रामपाल ही होगा। सोहना फिर सो गया। सुबह देर तक सोता रहा सोहना। आंखें खुलीं तो सामने बुआ और रामपाल को बैठे पाया। बुआ ने कहा, "रामपाल, यह सोहना है। रायपुरा गाँव से आया है। जसन्वत का बेटा है।"

एक गहरी निगाह सोहना के गबरू जवान बदन पर डालते हुए रामपाल ने कहा, "तुझे रोटी-राटी खिलाई सन्तो ने ?"

"खूब पेट भरकर खाया जी।"

रामपाल ने कहा, "आ, चल, खेत तक चलते हैं।" सोहना चुपचाप साथ हो लिया।

रामपाल उसके कन्धे पर हाथ रखता हुआ बोला, "तो तू गाँव से नौकरी की तलाश में आया है ! मिला कोई काम ?"

"हां, दस रुपये रोज देता है सेठ। कुछ दिन काम देखकर पगार बढ़ा देगा।"

"तेरा जिस्म तब तक मिट्टी में मिल जावेगा।"

रामपाल अपने चारों तरफ झांकता हुआ सोहना के कान में बोला, "तुझे काम चाहिए न ! चल मेरे नाल, ज्यादा पैसों वाला काम मैं दिलवा दूंगा तुझे। पहले ट्रेनिंग होगी। थोड़ी पगार के साथ। ट्रेनिंग खत्म होते ही अच्छी पगार देवेंगे वे लोग।"

"अच्छा, तब तो मैं भी तेरे संग चलूँगा।"

"ठीक है, कल तैयार रहना। इस बात का जिक्र बीजी से न करना।"

"ना, जी, ना।" सोहना ने होंठों पर हाथ धर लिया।

शाम का अंधियारा धरती पर उतर आया था। सोहना पहले ही से पान की दुकान वाले नुक्कड़ पर खड़ा रामपाल के आने की राह देख रहा था। थोड़ी देर बाद रामपाल ने उसका कंधा थपथपाया।

"आ गया ? आ, चल।" दोनों के कदम आगे बढ़ते गये। रात की खामोशी बढ़ती गई। रात के अंधेरों का घनत्व बढ़ता गया। सोहना चलते-चलते थक गया। रामपाल ने उसे खाने के लिए रोटियाँ दीं। "अब चल, उठ, आगे काफी दूर नहीं जाना।"

घुप्प अंधेरे में रामपाल के भारी कदमों की आवाज सन्नाटा चीर रही थी। गर्मी की तपन और रेगिस्तान से उठती गर्म हवाएं सांय-सांय कर रही थीं। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक शिविर-सा मिला। सोहना को तसल्ली हुई—'चलो, पहुँच गये।' उसने गहरी साँस ली और रामपाल के पास आकर रुक गया।

"तू यहीं ठहर, सोहना, मैं जल्दी आता हूँ।"

सोहना ने देखा, रामपाल के कदम तेजी से शिविर की ओर बढ़े। शिविर से रोशनी के बार-बार जलने-बुझने की हरकत हो रही थी। सोहना सोच रहा था, 'यह कहां ले जा रहा है रामपाल उसे? यह कैसी जगह है?' रामपाल तेजी से उसी तरफ आता दिखा।

"आ जा, सोहना, सब ठीक है।"

सोहना ने कहा, "यहाँ तो कोई बस्ती नहीं, रामपाल। चारों तरफ अंधेरा और सन्नाटा। गांव की तरह यहां कुत्ते या सियार भी नहीं हैं।"

सिर्फ अपने ही पैरों की आहट।

कुछ देर बाद सोहना ने अपनी आँखों पर पट्टी बंधी हुई महसूस की। फिर ऐसा लगा, कोई उसे कन्धे पर उठाए जा रहा है। उसने रामपाल को आवाज लगाई।

"चुप रह, सोहना! मैं तुझे ले चल रहा हूँ।"

पौ फट चुकी थी। सोहना ने महसूस किया, उसकी आँखों पर पट्टियाँ नहीं हैं। सामने सरहद का विशाल घेरा। रामपाल ने सोहना की कोहनियां पकड़ लीं। "आ जा, वीरा!"

"अच्छा तो नया बन्दा है?"

"जी, सर।"

"क्या नाम है तेरा?"

"सोहना।"

"लेकिन अब सिर्फ 'काका' समझ।"

"समझ गया, जी।"

सर ने रामपाल की तरफ इशारा किया। "काले, तू इस पुत्तर को सब समझा दे।"

"जी, सर!"

रामपाल के मुँह से जो कुछ सोहना ने सुना, वह विश्वास नहीं कर पाया। यह कैसी नौकरी है! नाम अपना नहीं। अपने ही भाई-बन्धुओं और देश से गद्दारी! नहीं, वह ऐसा नहीं करेगा। वह वापस चला जाएगा। सोहना के कदम लौट पड़े। तभी रामपाल ने हवा में एक फायर किया।

"होश में आओ, सोहना ! यहाँ तक आए हुए कदम वापस नहीं लौटते। तुम्हारी इन हरकतों का जवाब तुम्हारी मौत है।"

"मैं मौत से नहीं डरता, रामपाल !"

"सोच ले, तुझे नौकरी चाहिए न ? तेरे माँ-बाप भूख से मर जाएंगे। तू जानवरों की तरह बोझा ढोते-ढोते जिन्दगी की आखिरी साँसें खत्म कर लेगा। यह गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी का अभिशाप ओढ़-बिछाकर कितने दिन गुज़र सकते हैं। देश ने तुझे क्या दिया है? दो वक्त की रोटी भी तो नहीं।"

एक सन्नाटेदार चुप्पी ने सोहना को जकड़ दिया। रामपाल ने कहा, "चल, सम्भाल खुद को।" वह अपने जैसे तमाम जवानों की भीड़ में गुम हो गया।

सोहना की ट्रेनिंग खत्म हो गई। इस बीच वह दो बार गाँव गया। ढेर सारे कपड़े, सामान और रुपये घर दे आया। गाँव से लौटते समय उसे अच्छा नहीं लगा था, यह उसने भीतर तक महसूस किया था। वह गाँव में ही रह जाए। यहीं मजूरी करे और चैन से रहे। पर रबड़ के तने से निकले दूध में सोहना के हाथ की अंगुलियाँ ही नहीं, पूरा का पूरा हाथ ही डूब चुका था।

सोहना ने अम्मा की बहुत-सी बातों का उत्तर चुप रहकर ही दिया था। उसका बुझा हुआ चेहरा देखकर हरविन्दर ने कहा, "अब तू शहर वापस न जा, सोहना। हम मिलकर कोई काम करेंगे। तेरी चौड़ी छाती सूख गई। खाता-पीता नहीं क्या ?"

सोहना सब कुछ सुन-समझकर भी चक्रव्यूह की ओर बढ़ गया था।

ट्रेनिंग में सोहना को अपनी टीम का लीडर बनाया गया। अपने काम को मुस्तैदी से करना ही उसे सिखाया गया है।

शहर में दंगे भड़कते, आग लगाई जाती, खून की नदियाँ बहतीं। लाशों के ढेर। सोहना का कभी निशाना नहीं चूकता। सोहना को कई बार इनाम भी मिले। पुलिस के छक्के छुड़ा देता है वह।

देश में साम्प्रदायिकता का ज़हर घुल गया है। कमांडर ने 'काका' से कहा है, "शहर में अच्छी तरह आतंक फैला दो। खुले-आम हत्याएँ

करवाओ। तबाही पैदा कर दो। यह सब तुम्हारी टीम को करना है, तुम्हारी लीडरशिप में।"

सोहना ने कहा, "ठीक है। ऐसा ही होगा।"

कई रात की बातचीत और तैयारी के बाद हत्याओं का सिलसिला शुरू हो गया। काका के गिरोह और पुलिस में खुलेआम गोलियाँ चलीं। आखिरी सांस तक काका लड़ता रहा। लेकिन पुलिस ने उसे चारों तरफ से घेर लिया। पुलिस के हाथों मरना उसके धन्धे का असूल नहीं था। सोहना ने अपनी कनपटी पर गोली दाग ली। सोहना का क्षत-विक्षत शरीर जमीन पर पड़ा था। सुबह अखबार की सुर्खियों में सोहना उर्फ काका नामक भयंकर आतंकवादी के पुलिस द्वारा हताहत किए जाने की खबर थी। जसवन्त ने देखा, सड़क के पार एक दुकान का दरवाज़ा थोड़ा-सा खुला है। उसके पाँव उधर बढ़ गये। वह भी चाय की दुकान में बैठ गया। सामने बैठे व्यक्ति के हाथों का अखबार देखकर जसवन्त ने कहा, "भाई, यह तसवीर किसकी है, जरा पढ़कर सुनाओ।"

"अरे भाई, यह खूँखार आतंकवादी काका उर्फ सोहना है, जो रायपुरा गाँव का रहने वाला था। इसने शहर में बहुत आतंक फैला रखा था।"

जसवन्त की बूढ़ी शिराओं का लहू बर्फ हो गया।

वही नाक-नक्शा। सोहना! मेरा बेटा···? नहीं, यह नहीं हो सकता।

"हरविन्दर, तू कहती थी, तेरा बेटा शहर में अच्छी कमाई कर रहा है। अबकी बरस तू उसका ब्याह कर प्यारी-सी बहू लाएगी। देख हरविन्दर, यह फोटो तेरे बेटे सोहना ही की है न?"

□